पब्लिकेशन्स डिवीज़न द्वारा प्रकाशित पुस्तिकाएँ

★

(१) भाइयो और बहनो भाग १
(२) ,, ,, ,, भाग २
(३) ,, ,, ,, भाग ३
(४) ,, ,, ,, भाग ४
(५) ,, ,, ,, भाग ५
(६) मज़दूरों का सरकारी बीमा
(७) दामोदर घाटी योजना
(८) हिन्दी की प्रादेशिक भाषाएँ
(९) भारत की स्वाधीनता का अधिकार पत्र

मिलने का पता—

डिस्ट्रीब्यूशन अफ़सर
पब्लिकेशन्स डिवीज़न
मिनिस्ट्री आफ़ इन्फार्मेशन ऐण्ड ब्राडकास्टिंग, गवर्नमेंट आफ़ इण्डिया
ओल्ड सेक्रेटेरियट, दिल्ली

सुलभ साहित्य-माला ❦ ❦ पचीसवाँ पुष्प

शरत्-साहित्य

शरत्-पत्रावली

अनुवाद-कर्त्ता

डॉ॰ महादेव साहा

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई

बचपनके साथी

'घनश्याम' को

समर्पित

भूमिका

साहित्यमें व्यक्तिगत पत्रोंका एक विशेष स्थान है। भारतीय पत्र-साहित्यमें बंगलाका पत्र-साहित्य आगे बढ़ा हुआ है। उन्नीसवीं और बीसवीं सदीके कितने ही साहित्यकारोंके पत्र-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। पत्र-साहित्यको संस्मरणका पूरक कहा जा सकता है।

पत्र-साहित्यके संकलनके रास्तेमें कितनी ही कठिनाइयाँ हैं। पत्र-लेखक अगर उनकी नकल अपने पास नहीं रख छोड़ता है या जिन्हें पत्र लिखा गया है वे उन्हें सँभालकर नहीं रखते हैं तो यह काम नहीं किया जा सकता। इन्हीं कारणोंसे कितने ही महान् साहित्यकारों तथा दूसरोंके पत्रोंका संकलन बहुत कुछ असंभव-सा हो गया है।

जहाँतक शरच्चन्द्रके पत्रोंका प्रश्न है, यह बड़े हर्षकी बात है कि जिन्हें उन्होंने पत्र लिखे उन्होंने उन्हें सँभालकर रखा और वे भिन्न-भिन्न अवसरोंपर पत्रिकाओंमें छपते भी रहे। पत्रिकाओं तथा शरच्चन्द्रके कतिपय मित्रोंकी सहायतासे बंगला-साहित्यके अथक गवेषक श्री ब्रजेन्द्रनाथ वन्द्योपाध्यायने उनके पत्रोंका संकलन कई वर्ष पहिले शुरू किया था। उन्होंने अबतक एकाधिक पत्र-संकलन प्रकाशित भी कराए हैं।

शरच्चन्द्रके पत्रोंके संकलनके काममें मैं उनके मित्रों तथा पत्रिकाओंकी सहायतासे कई वर्षोंसे लगा हुआ था। ब्रजेन्द्रनाथके संकलनोंने मेरा काम सहज बना दिया।

वर्त्तमान हिन्दी अनुवादके छप जानेके बाद मुझे कितने ही और पत्र मिले हैं जिन्हें अगले संस्करणमें देनेकी इच्छा है।

इन पत्रोंको पढ़नेसे पता चलेगा कि शरच्चन्द्र अपने व्यक्तिगत जीवनमें कितने महान् थे। उन्होंने कितने ही नए साहित्यकारोंको तैयार किया, पत्रिकाओंके लिए निःस्वार्थ भावसे अथक परिश्रम किया और जीवन-पथमें आनेवाली विभिन्न कठिनाइयोंका बड़े साहसके साथ सामना किया।

नए पुराने साहित्यकारोंके सीखनेके लायक इन पत्रोंमें बहुत-सी बातें मिलेंगी। आशा है पत्रावलीसे पूरा फायदा उठाया जा सकेगा।

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकरने शरत् साहित्यका यथासाध्य प्रामाणिक अनुवाद प्रकाशितकर हिन्दीके अनुवाद-साहित्यको समृद्ध बनाया है। शरच्चन्द्रके कई असमाप्त उपन्यास, कई दर्जन निबन्ध-संकलन अभीतक हिन्दीमें नहीं आए हैं। मैं उनके अनुवादमें लगा हुआ हूँ और शीघ्र ही उन्हें हिन्दी-जगतके सामने उपस्थित करनेकी आशा रखता हूँ। इसके अलावा मुझे शरच्चन्द्रकी जीवनी और शरत्-साहित्यपर एक-एक पुस्तक लिखनेकी इच्छा है। आशा है अगले वर्षतक यह काम समाप्त हो जायगा।

स्वाधीनता कार्यालय,
कलकत्ता
जून, १९५२

महादेव साहा

पत्र–सूची

परिचय

[जिन जिन लेखकों और मित्रोंको पत्र लिखे गये थे, उनका]

१ उपेन्द्रनाथ गंगोपाध्याय—शरत्चन्द्रके रिश्तेके मामा। बंगलाके प्रसिद्ध उपन्यासकार। 'विचित्रा' नामक मासिक पत्रिकाके सम्पादक। शशिनाथ, राजपथ, अमूल-तरु, अस्तराग, दिक्शूल आदि उपन्यास, नवग्रह, गिरिका आदि कहानी संग्रह तथा 'आत्मकथा' इनकी मुख्य रचनायें हैं।

२ प्रमथनाथ भट्टाचार्य—शरत्चन्द्रके मित्र और साहित्यरसिक।

३ फणीन्द्रनाथ पाल—'यमुना' पत्रिकाके सम्पादक। इसी पत्रिकामें पहले पहल शरत्चन्द्रकी रचनायें प्रकाशित हुई और वे साहित्य-जगतमें प्रसिद्ध हुए।

४ हेमेन्द्रकुमार राय—छायावादी उपन्यास और कहानियोंके अलावा इन्होंने कितनी ही रोमांचकारी जासूसी कहानियाँ भी लिखी हैं। पसरा, मधुपर्क सिन्दूरचुपड़ी, माला-चन्दन आदि इनके कहानी-संकलन हैं। आलेयार आलो, जलेर आलपना, काल–वैशाखी, पायेर धुलो आदि बड़ी कहानियाँ और उपन्यास हैं। 'यौवनेर दान' नामक इनका कविता-संग्रह भी उल्लेखनीय है।

५ हरिदास चट्टोपाध्याय—शरत्चन्द्र चट्टोपाध्यायके प्रकाशक गुरुदास चट्टोपाध्याय एण्ड सन्सके मालिक।

६ मणिलाल गंगोपाध्याय—'भारती' पत्रिकाके सम्पादक। विदेशी कहानियोंके अनुवादमें दक्ष। कल्पकथा, आलपना, झाँप, महुवा, पापड़ी और जलछवि आदि कहानीसंग्रह प्रसिद्ध हैं। 'मुक्तार मुक्ति' नामसे एक नाटक भी इन्होंने लिखा था।

७ सुधीरचन्द्र सरकार-शरत्चन्द्रके साहित्यिक मित्र। शिशु-साहित्यिक। 'मौचाक' (मधुचक्र) नामक शिशु-पत्रिकाके सम्पादक।

८ मुरलीधर वसु—शिशु-साहित्यिक और शरत्चन्द्रके मित्र।

९ प्रमथनाथ चौधरी—बंगालके सुप्रसिद्ध कवि, कहानी, उपन्यास और निबन्धकार। 'सबुज पत्र'के सम्पादक। बीरबलेर हाल खाता, नानाकथा,

बीरबलेर टिप्पणी, नाना चर्चा, घरे बाहिरे, आदि इनके निबन्ध-संग्रह हैं। नील लोहितेर आदि प्रेम, चारयारी कथा, आदि उनके कितने ही कहानी-संग्रह हैं। दर्शन, संगीत, किसानोंकी समस्या, इतिहास आदि पर भी इन्होंने कितनी ही पुस्तकें लिखी हैं। इनकी व्यंग रचनायें आम तौर पर बीरबलके नामसे छपा करती थीं। आप रवीन्द्रनाथके बहनोई थे।

१० **लीलारानी गंगोपाध्याय**—शरत्‌चन्द्रकी साहित्यिक शिष्या और कहानी-लेखिका।

११ **हरिदास शास्त्री**—शरत्‌चन्द्रके मित्र।

१२ **अक्षयचन्द्र सरकार**—साहित्यरसिक और शरत्‌चन्द्रके अनुग्रह-भाजन।

१३ **दिलीपकुमार राय**—सुप्रसिद्ध नाट्यकार द्विजेन्द्रलाल रायके पुत्र। उपन्यासकार, निबन्धकार, संगीतज्ञ और अरविन्द-भक्त। मनेर परस, रंगेर परस, बहुवल्लभ, दुधारा, दोला आदि इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। तीर्थंकर आदि कितने ही निबन्ध संग्रह छप चुके हैं। भ्रमण, संगीत आदिपर भी इन्होंने काफी लिखा है। शरत्‌चन्द्रकी 'निष्कृति' का इन्होंने अँग्रेजी अनुवाद किया है।

१४ **भूपेन्द्रकिशोर रक्षित-राय**—क्रान्तिकारी कार्यकर्ता और शरत्‌चन्द्रके मित्र। 'वेणु' नामक पत्रिकाके सम्पादक।

१५ **कृष्णेन्दु नारायण भौमिक**—'भोटरंग' नामक हास्यरसकी पत्रिकाके सम्पादक और शरत्‌चन्द्रके भक्त।

१६ **अतुलानन्द राय**—शरत्‌चन्द्रके भक्त और साहित्यरसिक।

१७ **अविनाशचन्द्र घोषाल**—शरत्‌चन्द्रके मित्र। 'वातायन' पत्रिकाके सम्पादक।

१८ **मतिलाल राय**—अरविन्द घोषके भक्त और सहकर्मी। प्रवर्तक संघ (चन्दन नगर, बंगाल) तथा कितने ही उद्योग-धन्धे, बैंक, बीमाकंपनीके संचालक। प्रवर्तक नामक मासिक पत्रिकाके सम्पादक और दार्शनिक लेखक।

१९ **पशुपति चट्टोपाध्याय**—नाट्यकार, पत्रकार और शरत्‌चन्द्रके भक्त।

२० **जहानआरा चौधरी**—'वर्षवाणी' और 'बेगम'की सम्पादिका।

२१ **काजी अब्दुल वदूद**—कोषकार, निबन्धकार, उपन्यासकार और जीवनीकार । मीरपरिवार, हिन्दू-मुसलमान, गेटे, क्रीएटिव-बेंगाल आदि इनकी रचनायें हैं ।

२२ **उमाप्रसाद मुखोपाध्याय**—स्वर्गीय आशुतोष मुखोपाध्यायके पुत्र, साहित्य-रसिक और 'बंगवाणी'के सम्पादक । इसी पत्रिकामें पहले पहल धारावाहिक रूपमें पथेर दावी (पथके दावेदार) नामक शरत्चन्द्रका उपन्यास प्रकाशित हुआ था ।

२३ **रवीन्द्रनाथ ठाकुर**—परिचय अनावश्यक ।

२४ **केदारनाथ बन्द्योपाध्याय**—सुप्रसिद्ध उपन्यास और कहानीकार । बंगला-साहित्यमें 'दादा मोसाय'के नामसे प्रसिद्ध । इन्होंने शेष खेया, अमराकि ओके, कबुलति पाथेय, दुक्खेर दिवाली इत्यादि दर्जनों उपन्यास और कहानियाँ लिखी हैं । चीनेर यात्रीमें इन्होंने बक्सर-विद्रोहके समयकी अपनी चीन यात्राका विवरण दिया है ।

२५ **चारुचन्द्र बन्द्योपाध्याय**—मौलिक और विदेशी छाया लेकर कई दर्जन उपन्यासोंके लेखक । यमुना पुलिने, भिखारिनि, दोटाना, चोर काँटा, हेरफेर, हाईफेन, आदि इनकी प्रसिद्ध रचनायें हैं । 'रवि-रश्मि' नामसे इन्होंने रवीन्द्रनाथपर एक पुस्तक लिखी है ।

२६ **महेन्द्रनाथ करण**—बंगालकी तथाकथित अछूत 'पोद' जातिके कार्यकर्त्ता । 'पौन्द्र क्षत्रियवंश-परिचय' पुस्तकके लेखक और शरत् चन्द्रके भक्त ।

२७ **अमल होम**—प्रसिद्ध पत्रकार, साहित्यरसिक और शरत्चन्द्रके अनन्य भक्त ।

२८ **सुरेन्द्रनाथ गंगोपाध्याय**—साहित्यरसिक और शरत्चन्द्रके रिश्तेमें मामा ।

२९ **मणीन्द्रनाथ राय**—साहित्यरसिक और शरत्चन्द्रके मित्रके पुत्र ।

३० **बुद्धदेव भट्टाचार्य**—साहित्यरसिक और शरत्चन्द्रके भक्त । वनस्पतिशास्त्रके अध्यापक ।

शरत्-पत्रावली

१

[श्री उपेन्द्रनाथ गंगोपाध्यायको लिखित]

डी. ए. जी. का दफतर,
रंगून १०-१-१९१३

प्रिय उपीन,

तुम्हारा पत्र पाकर दुश्चिन्ता दूर हुई। दो दिन पहिले फणीन्द्रकी चिट्ठी और 'चरित्रहीन' मिले। तुम लोगोंपर अधिक दिनों तक क्रोध करना सम्भव नहीं, इसलिये अब क्रोध नहीं है। लेकिन कुछ दिन पहिले सचमुच ही बहुत क्रोध और दुःख हुआ था। मैं केवल अचरजसे सोचता था कि यह करते क्या हैं। एक भी चिट्ठी जब नहीं देते तो जरूर ही इनकी मति-गति बदल गई है। तुमसे एक बात कह दूँ उपेन, मुझमें एक बड़ी बुरी आदत है कि जरा-में ही सोच बैठता हूँ कि लोग जो कुछ करते हैं जान-बूझकर ही करते हैं। इच्छा न होते हुए भी कोई कोई आदतके कारण किसी दूसरी तरहका वर्ताव करते हैं। सेनसिटिव (संवेदन) नामक एक बात है। मुझमें वह अत्यधिक मात्रामें है। सुरेन्द्रको आज दो हफ्ते हुए एक चिट्ठी लिखी थी। आज तक उसका जवाब नहीं मिला। ये लोग क्यों तो लिखते हैं और क्यों लिखना बंद करते हैं। तुमने समाजपतिको 'काशीनाथ' देकर अच्छा काम नहीं किया। वह 'बोझा' का जोड़ीदार है। बचपनमें अभ्यासके लिये लिखी गई

कहानी है। छपवाना तो दूर रहा लोगोंको दिखाना भी उचित नहीं है। मेरी हार्दिक इच्छा है कि वह न छपे और मेरे नामको मिट्टीमें न मिलाया जाय। अकेला 'बोझा' ही काफी हो गया है।

मैं 'यमुना' के प्रति स्नेहहीन नहीं हूँ। यथासाध्य सहायता करूँगा। पर छोटी कहानियाँ लिखनेकी अब इच्छा नहीं होती, तुम लोग ही लिखो। निबन्ध लिखूँगा, और भेजूँगा। 'चरित्रहीन' कब पूरा होगा यह नहीं कह सकता। आधा ही हुआ है। पूरा होनेपर समाजपतिको ही भेज दूँगा, यह कहना ठीक नहीं होगा। तुम अगर कलकत्तेमें होते तो तुम्हारे पास भेजता। इसी बीच तुम समाजपतिको लिख देना कि 'काशीनाथ' को न छापें। अगर छाप देंगे तो लज्जासे गड़ जाऊँगा। तुमने दो एक कहानियाँ लिखनेको कहा है और भेजनेको लिखा है। अगर लिख सका तो किसे दूँगा, तुम्हें या फणीको?

इस बातको गुप्त रूपसे तुम्हींको लिख रहा हूँ। गिरीन तब छोटा था; तभी मैं परिवारसे बाहर चला आया था। इतने वर्षोंके बाद शायद उसे मेरी याद भी न हो। उपीन, तुम्हें एक बात और कहूँ। एक दिन उसकी एक पुस्तक खरीदनी चाही थी। तुमने मना करते हुए कहा था कि सुनने पर उसे दुःख होगा। उसी बातको याद रख कर ही मैंने नहीं खरीदी। साफ साफ एक पुस्तक माँगी भी थी, लेकिन उसने नहीं भेजी। बचपनमें उसकी अनेक चेष्टाओंका संशोधन कर दिया था। मैं लिखता था, इसी लिये उन लोगोंने भी लिखना शुरू किया। उस मकानमें शायद मैंने ही पहिले उसपर ध्यान दिया। इसके बाद वे लोग सरकंडेसे लिखकर एक हस्तलिखित मासिकपत्रिका निकालते थे। आज तक उसने एक भी प्रति मुझे पढ़नेको नहीं दी। शायद वह सोचता है कि मेरे ऐसा मूर्ख आदमी उसकी चीजोंको नहीं समझ सकता। जाने दो, उसके लिये दुःख करना बेकार है। संसारकी गति ही शायद यही है। मेरा स्वास्थ्य आज कल अच्छा है। पेचिस अच्छी हो गई है। आज कल पढ़ना एक तरहसे बंद किया है। मेरा असमाप्त 'महाश्वेता' (तैलचित्र) फिर समाप्त होनेकी ओर धीरे धीरे बढ़ रहा है। उस बड़े उपन्यासको तुम्हारे लिखनेका इरादा है न, अगर नहीं है तो बहुत बुरा है। वकालत भी करो और उसे भी न छोड़ो।

मेरा कलकत्ता जाना—इस देशको छोड़कर शायद संभव नहीं होगा। समझ रहा हूँ स्वास्थ्य भी ठीक नहीं रहेगा, लेकिन ठीक न रहना ही अच्छा है, पर वहाँ जाना ठीक नहीं। ऐसा ही लग रहा है। मेरी फाउण्टेनपेन तुम्हारे हाथोंमें अक्षय हो। उस कलमने बहुत-सी चीजें लिखी हैं। काम लेने पर और भी लिखेगी।

आज यहीं तक। अगर 'चन्द्रनाथ' भेजना संभव हो और सुरेन्द्र राजी हो, तो जहाँ तक होगा संशोधन करके फणीको भेजूँगा। चिट्ठीका जवाब देना।

—शरत्

---

१४ लोअर पोजांउग डाउन स्ट्रीट
रंगून, २६-४-१९१३

श्रीचरणेषु। तुम्हारी चिट्ठी पाकर जितना अचरज हुआ उससे सौगुना व्यथित हुआ। मुझसे डाह करोगे, इस बातको अगर मैं स्वयं कहूँ तो क्या तुम विश्वास करोगे? कलकत्तेकी स्मृति आज भी मेरे मनमें जीती जागती है। मैं बहुत-सी बातें भूलता हूँ सही। लेकिन इन बातोंको इतने जल्दी कदापि नहीं। शायद कभी नहीं भूलता। जो कुछ हो इसकी जिम्मे-दारी मैं नहीं लूँगा। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि यदि निरालेमें तुम एक बार मेरे मुँह और मेरी बातोंको याद कर देखो, तो समझ सकोगे कि तुम मुझसे डाह करोगे, यह बात मेरे मुँहसे नहीं निकल सकती। मैं तो उपीन, इस बातकी कल्पना ही नहीं कर सकता। फिर भी कहता हूँ कि तुम्हारी जो इच्छा हो मेरे संबंधमें सोच समझ सकते हो। मैं तुम्हें अपना उतना ही मंगलाकांक्षी सुहृद् आत्मीय और रिश्तेमें मान्य व्यक्ति समझूँगा, और यही हमेशा किया है। तुम्हारा आपसमें झगड़ा फिसाद हो सकता है, इसलिये क्या मैं उसके बीच पड़ूँगा? तुमने विश्वास किया है कि मैंने कहा है कि तुम मुझसे डाह करते हो। मेरे संबंधमें तुमने ऐसी बातपर कैसे विश्वास किया और उसे मुझे लिखनेका साहस किया? बुरा होनेके कारण क्या मैं इतना अधम हूँ? मैं मनसे ज्ञानसे इस तरहकी बातकी कल्पना कर सकता हूँ, यह आज

पहिली बार सुन रहा हूँ। मुझे तुमने गहरी चोट पहुँचाई है। अगर अधिक दिनोंतक जीवित न रहूँ तो यह तुम्हारे मनमें भी एक दुःखका कारण बना रहेगा कि तुमने व्यर्थ ही मुझे दुःख पहुँचाया। तुम्हारी चिट्ठी पानेके बादसे बार बार सोचता रहा कि तुम मुझे न जाने कितना नीच समझते हो। शायद मेरे नीच और मूर्ख होनेके कारण ही तुम मेरे बारेमें (हाल ही कलकत्तेमें इतनी घनिष्ठता और इतनी बातचीत हो जानेके बाद भी) इस बातपर विश्वास कर सके हो। नहीं तो नहीं करते। सोचते कि ऐसा हो ही नहीं सकता। मेरी सौगंध उपीन, पत्र पाते ही लिखना कि तुम इस बातपर अब विश्वास नहीं करते। मैंने कुछ दिन पहले शायद सुरेनको लिखा था कि मुझसे विद्वेष करके ही मानों ये चीजें छप रही हैं। इसका कारण यह है कि मैंने भी समाजपतिको लिखा कि उसे अब न छापें, फिर भी मुझे कोई उत्तर न देकर उनकी छपाई चलती रही। जो कुछ भी हो, अब भीतरकी बात भी मालूम हुई। तुमने भी वही बात समाजपतिको कही थी। उसके बारेमें अब और जानकर सारा मामला समझ सका। तुम मेरे कितने मंगलाकांक्षी हो यह भी अगर न समझता उपीन, तो आज इस तरहकी कहानियाँ न लिख सकता। मैं मनुष्यके हृदयको समझता हूँ। तुम जिस प्रकार अपने अन्तर्यामीके सामने निडर हो बिना संकोचके कह सकते हो कि मैं शरतको सचमुच ही प्यार करता हूँ, मैं भी बिलकुल वैसे ही जानता हूँ और उसी तरह विश्वास करता हूँ।

जाने दो इस बातको। केवल एक 'चन्द्रनाथ'को लेकर ही इतना हंगामा। यद्यपि यह समझमें नहीं आ रहा है कि वह फणीपालके पत्रमें कैसे छपेगा।

तुम लोगोंने सारी बातें न समझकर चारों ओरसे न सम्हलकर अचानक विज्ञापन देकर काफी बेवकूफीका काम किया है और उसका फल भोग रहे हो। दोष तुम लोगोका ही है और दूसरे किसीका नहीं। फणीपालके लिये तुम कुछ पशोपेशमें पड़े हो, इसे पग पग पर देख रहा हूँ।

मैं और भी मुसीबतमें पड़ गया हूँ। एक और मेरी बिलकुल इच्छा नहीं है कि 'चन्द्रनाथ' जैसा है वैसा ही छपे। यद्यपि वह कुछ छप भी गया है और बाकी हिस्सा मुझे नहीं मिला है। सुरेन बहुत डरता है कि कहीं वह चीज खो

न जाये। वे मेरी चीजोंको हृदयसे प्यार करते हैं। शायद इसीलिये उनकी इतनी सतर्कता है।

एक बात और उपीन,......'भारतवर्ष'के लिये प्रमथ बार बार 'चरित्रहीन' माँग रहा था। अंतमें इस तरहसे जिद्द कर रहा है कि क्या कहूँ। वह मेरा बहुत दिनोंका पुराना दोस्त है। और दोस्त कहनेसे जिस बातका बोध होता है, वह सचमुच वही है। उसने गर्वके साथ सबसे कहा है कि मैं 'चरित्रहीन' दूँगा ही और इसी आशामें ज...आदिके चार पाँच उपन्यासोंको घमंडमें आकर लौटा चुका है। वही 'भारतवर्ष'का मुखिया है। अब द्विजू बाबू आदि, (हरिदास, गुरुदासके पुत्र) ने उसे धर दबाया है। इधर 'यमुना'में भी विज्ञापन छपा है कि उसी पत्रिकामें 'चरित्रहीन' छपेगा। समाजपति भी बराबर रजिस्ट्री-चिट्ठीयाँ लिख रहे हैं। किधर क्या करूँ, कुछ भी समझमें नहीं आ रहा है। अभी अभी प्रमथनाथकी लंबी रोने धोनेकी चिट्ठी मिली। वह कहता है कि यह उसे नहीं मिला तो वह मुँह दिखाने लायक नहीं रहेगा। यहाँ तक कि उसे पुराने इष्ट मित्र क्लब वगैरह छोड़ना पड़ेगा। क्या करूँ, जरा सोच कर जवाब देना। तुम्हारा जवाब चाहिये। क्योंकि एक मात्र तुम ही शुरूसे इसका इतिहास जानते हो।

बहुत अच्छा नहीं हूँ। सात आठ दिनोंसे ज्वर आ रहा है। अगर जरूरी समझना तो सुरेनको यह पत्र दिखा देना। तुम आपसमें जितना चाहो लड़ो लेकिन मैं तुम लोगोंका किसी समय शिक्षक था, कमसे कम उम्रका सम्मान तो देना ही।

—सेवक शरत्

(फणी बाबू, यह पत्र आप पढ़कर उपेनको भेज दें।)

नं० १४. पोजाउंग डाउन स्ट्रीट,
रंगून १०-५-१९१३

प्रिय उपेन्द्र, आज तुम्हारी भी चिट्ठी मिली और प्रमथकी भी। तुम मेरे बारेमें बिल्कुल स्वस्थ हो गये हो, इससे कितनी तृप्तिका अनुभव कर रहा हूँ,

इसे लिखकर व्यक्त करनेकी चेष्टा पागलपन होगी। तुम्हें अब क्लेश नहीं हो रहा है या दुख नहीं हो रहा है, इसीसे समझ गया कि अत्यन्त सहज भावसे मेरे कर्तव्यका निर्धारण कर दिया है। मैंने अपनेको मूर्ख कहा था—क्या यह मिथ्या है? तुम लोगोंके सामने मैं अपनेको पंडित समझूँगा, क्या मैं इतना बड़ा अहमक हूँ? हो सकता है कि बनाकर कहानियाँ लिख सकता हूँ, पर इसमें पांडित्य कहाँ? बी. ए., एम्. ए., बी. एल., इन डिग्रियोंको मैं अत्यन्त श्रद्धा करता हूँ, यही लिखा था। प्रमथ लिखता है कि कहानियोंको उसकी सान्ध्य मजलिसमें अत्यन्त सम्मान मिला है। द्विजेन्द्रलाल रायने इतनी प्रशंसा की है कि विश्वास नहीं होता। दीदीका 'नारीका मूल्य' कहा जाता है कि 'अमूल्य' हुआ है। द्विजू बाबूका कहना है कि ऐसी कहानी शायद रवि बाबूकी भी नहीं है और ऐसा निबंध बंगला भाषामें उन्होंने पहिले कभी नहीं पढ़ा था। सत्य मिथ्या भगवान् जाने। फणीकी पत्रिका छोटी है सही, पर वैसी अच्छी पत्रिका शायद आज कल एक भी नहीं निकलती है। ईश्वर करे, फणी इसी तरह परिश्रम करके अपनी पत्रिकाका संपादन करे। दो दिन बाद हो या दस दिन बाद श्रीवृद्धि अनिवार्य है। पर चेष्टा करनी चाहिये—परिश्रम करना चाहिये। और मेरी बात। मैं उसे छोटे भाईकी ही तरह देखता हूँ। उसकी पत्रिकासे अगर कुछ बच जाता है तब दूसरी पत्रिका पायेगी। लेकिन आज कल इतने अनुरोध आ रहे हैं कि मेरे दस हाथ होते तो भी काम पूरा कर सकता, ऐसा नहीं लगता। 'चरित्रहीन' उसकी पत्रिकामें नहीं प्रकाशित होगा, यह बात किसने कही है? प्रमथको पढ़नेके लिये दिया है। लेकिन अगर वह कह बैठता कि वही प्रकाशित करेगा, तो हो सकता है कि मुझे सम्मति देनी पड़ती, लेकिन वह लोग ऐसी माँग नहीं करते। शायद पाण्डुलिपि पढ़कर कुछ डर गये हैं। उन्होंने सावित्रीको नौकरानीके रूपमें ही देखा है, अगर आँख होती और कहानीके चरित्रका कहाँ किस तरहसे शेष होता है, किस कोयलेकी खानसे कितना अमूल्य हीरा निकल सकता है अगर इस बातको समझते तो इतनी आसानीसे उसे छोड़ना नहीं चाहते। अंतमें हो सकता है कि एक दिन अफसोस करें कि हाथमें आने पर भी कैसे रत्नका उन्होंने त्याग कर दिया है। मुझसे उसने पूछा है कि उपसंहार क्या होगा। मेरे ऊपर जिसका भरोसा नहीं, अवश्य ही वह उस तरहका पहिला उपन्यास

पहली पत्रिकामें प्रकाशित करनेमें आगा पीछा करेंगा, यह कोई आश्चर्यकी बात नही। लेकिन स्वयं ही वे लोग कह रहे हैं कि 'चरित्रहीन'का अंतिम अंश (अर्थात् तुम लोगोंने जितना पढ़ा है उसके बाद उतना और) रवि बाबूसे भी बहुत अच्छा हुआ है। (शैली और चरित्र-विश्लेषणमें) पर उन्हें डर है कि अंतिम अंशको मैं कहीं बिगाड़ न दूँ। उन्होंने इस बातको नहीं सोचा कि जो आदमी जान-बूझकर मेसकी एक नौकरानीको प्रारम्भमें ही खीच कर लोगोंके सामने हाजिर करनेकी हिम्मत करता है, वह अपनी क्षमताको समझ-बूझकर ही ऐसा करता है। अगर इतना भी नहीं जानूँगा तो झूठ ही इतनी उम्र तक तुम लोगोंकी गुरुआई करता रहा। और एक बात। प्रमथ कहता है कि 'भारतवर्ष'को मैं अपनी ही पत्रिका समझूँ और वैसा करता भी हूँ। मैंने प्रमथको वचन दिया है कि यथासाध्य करूँगा, लेकिन साध्य कितना है यह नहीं कहा। और भी एक बात है—वे दाम देकर लेख खरीदेंगे—तब उन्हें कमी नहीं होगी। लेकिन दाम देनेसे ही सबके लेख नहीं मिलते हैं। मेरे बारेमें शायद अब उन्होंने इस बातको समझा है। बहरहाल 'चरित्रहीन' मेरे हाथोंमें आते ही फणीको भेज दूँगा। अपने पास नहीं रखूँगा। पर प्रमथ फणीके हाथोंमें उसे नहीं देगा, क्योंकि फणीके ऊपर वे कुछ नाराज़ हैं। ऐसा ही होता है। क्योंकि मासिक पत्रोंके संचालक एक दूसरेको नहीं देख पाते। और कुछ नहीं। पर प्रमथ केवल मेरा बाल्य-बन्धु ही नहीं है, वह मेरा परम बन्धु और बहुत ही सच्चा आदमी है। सचमुच ही सज्जन व्यक्ति है। मैं उसे बहुत प्यार करता हूँ। इसी लिये भय था कि उसकी जोर जबरदस्तीसे मैं पार नहीं पाऊँगा। इस विषयमें ठीक खबर बादमें दूँगा।

तुम लिखते हो कि तुम लोग 'यमुना' को बड़ी करोगे। तुम लोग कौन? तुम 'यमुना' के परम बन्धु हो और निःस्वार्थ बन्धुत्व करने जाकर तुम्हें लांछना भोग करनी पड़ी है, इसे विशेष रूपसे जाननेके कारण ही तुम्हारे विषयमें जो कुछ सुना है उसमें रंचमात्र भी विश्वास नहीं किया। हो सकता है कि कुछ कूटनीतिक चाल चले हो—अच्छा ही किया है। जिसे प्यार करना उसकी इस तरहसे ही सहायता करना। फणीको तुम ही प्यार करते हो। लेकिन इसके अलावा 'तुम लोग' शब्दका अर्थ ठीक नहीं समझ सका। इस बार समझा

कर लिखना। 'पथका निर्देश' और 'रामकी सुमति'के बारेमें मेरा मत है कि 'पथका निर्देश' ही अच्छा है, पर यह कहानी जरा कठिन है। सभी अच्छी तरह नहीं समझ पायेंगे। मैंने भी अनेकोंसे अनेक प्रकारके मत सुने हैं। जो स्वयं कहानी लिखते हैं वे ठीक जानते हैं कि 'रामकी सुमति'को तो लिखा भी जा सकता है, पर पथका निर्देश लिखनेमें कुछ अधिक परेशानी उठानी पड़ेगी। शायद सभी लिख भी नहीं सकेंगे। इस तरहकी गड़बड़ीकी परिस्थितिमें लीक खोकर एक खिचड़ी पका डालेंगे। हो सकता है धैर्यकी कमीके कारण समाप्त होनेके पहिले ही बन्द कर दें। और अपनी आलोचना खुद कैसे करूँ। लेकिन कलकत्ता और इस देशके लोगोंकी रायमें दोनों ही कहानियाँ सुपरलेटिव डिग्रीमें एक्सेलेण्ट हैं। द्विजू बाबूका कहना है कि कहानियाँ आदर्श हैं। फणीकी पत्रिकामें प्रति मास इस तरहकी कोई चीज प्रकाशित हो, इसकी विशेष चेष्टा करनी चाहिये। पर मैं अब बहुत छोटी कहानियाँ लिखनेकी इच्छा नहीं करता। कुछ बड़ी हो ही जाती हैं। तुम लोगोंकी तरह काफी छोटी मानो लिख ही नहीं पाता। इसके अलावा एक बात और यहाँ मुझे कहनी है। मैं तो 'चन्द्रनाथ'को बिलकुल नये साँचेमें ढालनेकी चेष्टामें हूँ। हाँ, कहानी (प्लाट) ज्योंकी त्यों रहेगी। इसके बाद या तो 'चरित्रहीन' और नहीं हो तो उससे भी कोई अच्छी चीज 'यमुना'में प्रकाशित होनी चाहिये। और निबंध। इसकी भी अत्यन्त आवश्यकता है। अच्छे निबंध विशेष रूपसे आवश्यक हैं। ऐसा नहीं होता है, तो केवल कहानियोंसे पत्रिकाको यथार्थमें बड़े लोग बड़ी नहीं समझेंगे। मुझे अगर तुम लोग छोटी कहानी लिखनेके परिश्रमसे छुटकारा दे सकते हो, तो मैं निबंध भी लिख सकता हूँ और शायद कहानीहीकी तरह सरल और सुपाठ्य शैलीमें। इस विषयमें अपनी राय लिखना। अगर कहानी लिखनेका काम तुम लोग चला ले सकते हो, तो मैं केवल उपन्यास और निबंधमें पड़ूँ। नहीं तो दिखता है कि रातमें भी परिश्रम करना पड़ेगा। मेरी तबियत ठीक नहीं। रातमें नहीं लिख पाता; और पढ़ाईमें भी नुकसान होता है। आलोचना, निबंध, उपन्यास, कहानी, सब कुछ लिखनेसे लोग सव्यसाची कह कर मजाक उड़ायेंगे और दूसरी पत्रिकाओंमें भी कुछ देना होगा।

'देवदास' और 'पाषाण' भेज देना। मैं फिरसे लिखनेकी चेष्टा कर देखूँ-

गा। अच्छा फणी ३००० कापियाँ छाप कर रुपया क्यों बरबाद कर रहा है? उसके ग्राहकोंकी संख्या क्या कुछ बढ़ी है? मैं ऐसा नहीं समझता, पर इस बातका अधिक भरोसा है कि अगले साल उसकी पत्रिका श्रेष्ठ पत्रिकाओंकी पंक्तिमें खड़ी हो जायेगी।

फणीको लगातार आशंका होती है कि मैं शायद उसे छोड़कर अन्यत्र लिखने लगूँगा। लेकिन इस आशंकाका कारण क्या है? वह मेरे छोटे भाई जैसा है। इस बातको वह क्यों विश्वास नहीं कर पाता है, वही जाने। मैं नहीं जानता।

तुम्हारी 'क्रय विक्रय' कहानी सचमुच ही अच्छी है। लेकिन और कुछ बड़ी होनी चाहिये थी। और शेषको सचमुच ही शेष करना उचित था। ऐसी कहानीको तुमने इतनी जल्दबाजीमें क्यों खत्म की, नहीं जानता। एक बात याद रखना, कहानी कमसे कम १२, १४ पन्नेकी होनी चाहिये और नतीजा बहुत स्पष्ट होना चाहिये।

सुरेनने मेरी चिट्ठीका जवाब क्यों नहीं दिया? उसे अपने हाथकी कलम दी है, क्यों कि उससे अच्छी चीज मेरे पास देनेके लिये नहीं हैं। वह उसका क्या सद्व्यवहार कर रहा है, पूछ कर लिखना। मेरी कलमका असम्मान न होने पाये। और चार कलमें देना बाकी हैं। योगेश मजूमदार कहाँ हैं? पूंटू, बूड़ी और सौरीन इन लोगोंके लिये भी अपनी कलमें ठीक कर रखी हैं। किसी दिन भेज दूँगा।

गिरीन क्या बाँकीपुर लौटा? वह कहाँ है, यह नहीं मालूम होनेके कारण उसे जवाब नहीं दे सका। मेरे पास फोटो नहीं है, कभी यह बात याद नहीं आई। अच्छा, आज यहीं तक।

हाँ, एक बात और। सुधाकृष्ण बागचीने एक लिखित बयान भेजा है। वह कहता है कि सारी बातें झूठ हैं। अच्छी बात है। मैं जानता हूँ कि कौन-सी बात झूठ है। आदमी जब अस्वीकार कर रहा है, तो वहीं खत्म कर देना उचित है। इसपर वह बूढ़ा आदमी है। फणीन्द्र बाबू, आपका तार पाकर भी जवाब नहीं दिया। कारण जवाब देनेकी वस्तु मेरे हाथसे बाहर है। पर आशा करता हूँ कि जल्द ही हाथोंमें आयेगी।

अगली मेलसे आलोचना, और 'नारीका मूल्य' भेजूँगा। उसके बादवाली

डाकसे 'चन्द्रनाथ' और एक कोई चीज। 'चरित्रहीन' 'यमुना' में प्रकाशित हो, यही मेरी आन्तरिक इच्छा है। ईश्वरकी इच्छासे यही होगा। निश्चिन्त रहें। पर सुन रहा हूँ कि उसमें मेसकी नौकरानीके रहनेके कारण रुचिको लेकर जरा चख चख मचेगी। मचने दीजिये। लोग कितनी ही निन्दा क्यों न करें। जो लोग जितनी निन्दा करेंगे, वे उतना ही अधिक पढ़ेंगे। वह भला हो या बुरा, एक बार पढ़ना शुरू करनेपर पढ़ना ही होगा। जो समझते नहीं हैं, जो कलाका मर्म नहीं जानते, वे शायद निन्दा करेंगे। पर निन्दा करनेपर भी काम बनेगा। किन्तु वह साइकोलॉजी और एनलिसिसके संबंधमें बहुत अच्छा है; इसमें संदेह नहीं। और यह एक संपूर्ण वैज्ञानिक नैतिक उपन्यास (साइण्टफिक एथिकल नावेल) है! इस वक्त इसका पता नहीं चल रहा है।

—शरत्

१४, पोजाउंग डाउन स्ट्रीट
रंगून, २२ अगस्त १९१३

प्रिय उपीन, बहुत दिनोंके बाद तुम्हें चिट्ठी लिखने बैठा हूँ। तुमने भी बहुत दिनोंसे अपनी कोई खबर नहीं दी। मत लिखो, इसके लिये दुःख नहीं करता और उलहना भी नहीं देता। दो तीन महीनोंके बाद संभवतः फिर साक्षात्कार होगा। तब वे सारी बातें होंगी।

इस महीनेकी 'यमुना' मिली, तुम्हारी 'लक्ष्मी-लाभ' पढ़ी। इस संबंधमें तुम मेरी रायका विश्वास करोगे या नहीं, तुम्हारे ही शब्दोंमें प्रकट कर रहा हूँ—'बापके मुँहसे बेटेकी प्रशंसा सुननेसे कोई फायदा नहीं।' मेरी यथार्थ राय यह है कि इस तरहकी मधुर कहानी बहुत दिनोंसे नहीं पढ़ी। शायद यह तुम्हारी सबसे अच्छी कहानी है। अनावश्यक आडम्बर नहीं है। लोगोंका दोष दिखाना, संसारके कष्टोंको सामने रखना, इत्यादि कुछ नहीं है। केवल एक सुन्दर फूलकी तरह निर्मल और पवित्र है। मधुर अति मधुर। यही मैं चाहता हूँ। पढ़कर आनन्द अतिरेकसे आँखें यदि गीली न हो जायँ, तो वह कहानी कैसी? बहुत अच्छी बन पड़ी है। उपीन, आन्तरिक अभिप्राय प्रकट कर

रहा हूँ। बीच-बीचमें ऐसी ही कहानी पढ़नेको मिलनी चाहिये। हाँ, मुझे खुश करना कठिन काम है। लेकिन ऐसी चीज मिल जाय, तो मैं और कुछ नहीं चाहता। मेरी इतनी प्रशंसासे तुम्हें शायद जरा संकोच होगा, और शायद सभी मेरे साथ एकमत भी नहीं होंगे। लेकिन मुझसे अच्छा मर्मज्ञ आजके युगमें एक रवि बाबूको छोड़कर और कोई नहीं है। यह मत सोचना कि मैं गर्व कर रहा हूँ। लेकिन चाहे मेरी आत्म-निर्भरता कहो, चाहे गर्व ही कहो, मेरी धारणा यही है। ऐसी कहानी बहुत दिनोंसे नहीं पढ़ी थी। सुना है तुम्हारी एक बड़ी और अच्छी कहानी 'भारतवर्ष' में प्रकाशित हुई है। 'भारतवर्ष' अभी पहुँचा नहीं। नहीं कह सकता वह कैसी बनी है लेकिन यदि भाव और माधुर्यमें ऐसी ही बन पड़ी हो, तो वह भी निश्चय ही बहुत अच्छी कहानी होगी।

इसके अलावा तुम्हारे लिखनेकी शैली बहुत सुन्दर है। मैं यदि ऐसी सुन्दर भाषा पाता, भाषापर इसी तरहका अधिकार पाता, तो शायद मेरी कहानी और भी अच्छी होती। हाँ, मैं अपने साथ तुम्हारी तुलना नहीं कर रहा हूँ। इससे शायद तुम्हें संकोच होगा। लेकिन हर्ष होनेपर मैं उसे दबाकर नहीं रख सकता।

आज कल कैसे हो? मैं बहुत अच्छा नहीं हूँ। यह वर्षाकाल मेरे लिये बड़ा ही दुःसमय है। १०-१२ दिन ज्वर हुआ था, दो दिनसे अच्छा हूँ। मेरा प्यार। —शरत्

२

[प्रमथनाथ भट्टाचार्यको लिखित]

डी. ए. जी. का दफ्तर
रंगून २६-३-१२

प्रमथ, तुम्हारी चिट्ठी मिली। आज ही जवाब दे रहा हूँ। ऐसा तो नहीं

होता। जो मेरे स्वभावको जानता है, उसके सामने अपने संबंधमें इतनी अधिक कैफियत देना बेकार है।......

......मेरे संबंधमें कुछ जानना चाहते हो। संक्षेपमें वह कुछ कुछ इस प्रकार है।—

१. शहरके बाहर एक छोटे मकानमें नदीके किनारे रहता हूँ।

२. नौकरी करता हूँ। ९० रु० वेतन मिलता है और १० रु० भत्ता। एक छोटी दूकान भी है। खाये-खर्चे किसी तरह काम निकल जाता है। पूँजी कुछ भी नहीं है।

३. दिलकी बीमारी है। किसी भी क्षण...

४. पढ़ा है बहुत। लिखा प्रायः कुछ भी नहीं। पिछले १० वर्षोंमें शरीर-विज्ञान, जीवविज्ञान, मनोविज्ञान और कुछ इतिहास पढ़ा है। शास्त्र भी कुछ पढ़ा है।

५. आगसे मेरा सब कुछ ही जल गया है। पुस्तकालय और 'चरित्रहीन' उपन्यासकी पांडुलिपि भी। नारीका इतिहास करीब चार पाँच सौ पृष्ठ लिखा था, वह भी जल गया।

इच्छा थी, इस वर्ष छपवाऊँगा। मेरे द्वारा कुछ हो, यह शायद होनेका नहीं इसी लिये सब कुछ स्वाहा हो गया। फिर शुरू करूँ, ऐसा उत्साह नहीं हो रहा है। 'चरित्रहीन' ५०० पृष्ठोंमें प्रायः समाप्त हो चला था। सब कुछ गया।......

......तुम्हें एक और खबर देना बाकी है। तीनेक साल पहिले जब हृदयकी बीमारीके पहिले लक्षण दिखाई पड़े, तब मैंने पढ़ना छोड़ कर तैल-चित्र अंकन शुरू किया। पिछले तीन वर्षोंमें बहुतसे तैल-चित्र एकट्ठे हुए थे। वे भी भस्मीभूत हो गये। अंकनका केवल सामान भर बच गया है।

अब मुझे क्या करना चाहिये, अगर यह बतला दो तो तुम्हारी रायके मुताबिक कुछ दिनों तक चेष्टा कर देखूँ। उपन्यास, इतिहास, चित्रकारी, कौन-सा? किसको फिर शुरू करूँ बतलाओ तो?

तुम्हारे स्नेहका

—शरत्

४ अप्रैल १९१३, रंगून

प्रमथ, तुम्हारी पहलेवाली चिट्ठीका अभी तक जवाब नहीं दिया। सोच रहा था तुम सदा मुझे क्यों इतना प्यार करते हो। मैं इस बातको बहुत दिनोंसे सोचता हूँ।...प्रमथ, एक अहंकार करूँगा, माफ करोगे?

अगर माफ करो, तो कहूँ। मुझसे अच्छा उपन्यास या कहानी एक रवि बाबूके सिवा और कोई नहीं लिख सकेगा। जब यह बात मनसे और ज्ञानसे सच्ची प्रतीत होगी, उसी दिन निबंध या कहानी या उपन्यासके लिये अनुरोध करना। इसके पहले नहीं। तुमसे मेरा यह एक बड़ा अनुरोध रहा। इस विषयमें मैं झूठी खातिरदारी नहीं चाहता। मैं सत्य चाहता हूँ...

---

१७ अप्रैल १९१२, रंगून

प्रमथ, तुम्हारा पत्र कल मिला, आज जवाब दे रहा हूँ।...'चरित्रहीन' का जितना हिस्सा फिरसे लिखा था (और बहुत दिनोंसे नहीं लिखा) कमसे कम तुम्हें पढ़नेके लिये भेजनेकी बात सोची है। अगली मेलसे अर्थात् इसी सप्ताहके भीतर ही भेजूँगा। लेकिन और कुछ भी नहीं कह सकता। पढ़कर वापिस भेज देना। इसका पहला कारण यह है कि इसके लिखनेकी शैली तुम लोगोंको किसी भी हालतमें अच्छी नहीं लगेगी। पसंद करोगे या नहीं, इस विषयमें मुझे घोर संदेह है। इसीलिये उसे छापना मत। समाजपति महाशयने अत्यन्त आग्रहके साथ उसे माँगा था, क्योंकि उन्हें सचमुच ही अच्छा लगा है।...मेरी ये सब वाहियात रचनाएँ हैं। इनके यथार्थ भावोंको कष्ट उठाकर कौन समझेगा और कौन इसे अच्छा कहेगा?...तुम अगर सचमुच ही समझते हो कि यह तुम्हारी पत्रिका (भारतवर्ष) में छापने लायक है तो हो सकता है कि छापनेके लिये अनुमति दे दूँ, नहीं तो तुम केवल मेरे मंगलकी ओर दृष्टि रखकर जिससे मेरी ही चीज छपे ऐसी चेष्टा किसी भी हालतमें नहीं कर सकते। निरपेक्ष सत्य—साहित्यमें मैं यही चाहता हूँ। इसमें मैं रियायत नहीं चाहता। इसके अलावा तुम्हारे द्विजूदा (द्विजेन्द्रलाल राय) सहमत होंगे कि नहीं, कहा नहीं जा सकता। अगर कोई आंशिक परिवर्तन

जरूरी समझता है तो यह नहीं होगा। उसकी एक भी लाइन नहीं छोड़ने दूँगा। पर एक बात कह दूँ। केवल नाम और प्रारम्भको देखकर ही 'चरित्र-हीन' मत समझ बैठना। मैं नीति-शास्त्रका एक विद्यार्थी हूँ, सच्चा विद्यार्थी। नीति-शास्त्र समझता हूँ और किसीसे कम समझता हूँ मेरा ऐसा ख्याल नहीं। जो कुछ भी हो पढ़कर लौटा देना और निडर होकर अपनी राय लिखना। तुम्हारी रायकी कीमत है। लेकिन राय देते समय मेरे गम्भीर उद्देश्यको याद रखना। यह कोई बड़तल्लेकी किताब नहीं है......अगर छापनेके लायक समझना तो कहना मैं आखिरी हिस्सेको लिख दूँगा। उसे मैं जानता ही हूँ। मैं उल्टा सीधा जैसा कलमकी नोकपर आया, नहीं लिखता। शुरूसे ही उद्देश्य लेकर लिखता हूँ और वह घटनाचक्रमें बदल नहीं जाता। वैशाखकी 'यमुना' कैसी लगी? 'पथ निर्देश' को समझ लिया? शीघ्र उत्तर देना।—

---

२४ मई १९१३, रंगून

प्रमथ, रंगून-गजटमें द्विजूदाकी मृत्युका समाचार पढ़कर आश्चर्य-चकित हो गया। उन्हें मैं कम जानता था, ऐसी बात नहीं। हाँ, तुम्हारी तरह जाननेका अवसर नहीं मिला है। लेकिन जितना जानता था मेरे लिये वह बहुत कम नहीं था।......

उनके सम्मानकी रक्षाके लिये मुझसे जो कुछ बन पड़ता, वह अवश्य ही करता।......वह साहित्यिक और योद्धा थे। वह मेरा मूल्य समझते थे और नहीं समझने पर भी उनके सामने मुझे लज्जा नहीं थी। इसीलिये सोचा था कि लिख भेजूँगा। अच्छा होनेपर वे प्रकाशित करेंगे, नहीं होनेपर नहीं करेंगे। इसमें लज्जा-अभिमानका कारण नहीं था। लेकिन अब ऐरे गैरे नत्थू खैरे मेरा दाम लगायेंगे। हो सकता है, कहेंगे प्रकाशित करनेके लायक नहीं है। हो सकता है कहेंगे कि फाड़कर फेंक दो, या फाइल कर दो। अतएव भाई, मुझे क्षमा करो। तुम मेरे कितने बड़े सुहृद् हो, इसे मैं जानता हूँ। इस बातको

एक दिनके लिये भी नहीं भूलूँगा। तुमने मुझे गलत समझा या मुझपर क्रोध किया, तो भी मेरे मनका भाव अटल रहेगा। लेकिन यह दूसरी बात है। दूसरेकी पत्रिकाके लिये मैं अपनी मर्यादाको नष्ट नहीं करूँगा। मैं छोटी पत्रिकामें लिखता हूँ भाई, यही मेरे लिये काफी है। मुझे वहाँ सम्मान मिलता है, श्रद्धा मिलती है, इससे अधिक और किसी चीजकी आशा नहीं करता। एक बात और 'चरित्रहीन' के संबंधमें।......लिखा है,......बाबूने भी उन्हें सूचित किया है—कहा जाता है कि वह इतना अनैतिक है कि किसी पत्रिकामें प्रकाशित नहीं हो सकता।—शायद ऐसा ही होगा, क्योंकि तुम लोग मेरे शत्रु नहीं हो कि मिथ्या दोषारोपण करोगे। मैं भी सोच रहा हूँ कि लोग बहुत संभव है इसी तरह पहिले इसे ग्रहण करेंगे।......

...मैं अपने नामके लिये जरा भी नहीं सोचता, लोगोंकी जैसी इच्छा हो मेरे संबंधमें सोचें।—जाने दो इस बातको। काल ही मेरा विचार करेगा। मनुष्य सुविचार अविचार दोनों ही करेगा, इसके लिये चिन्ता करना भूल है।......मैं केवल पद्य ही नहीं लिख पाता, बाकी सब कुछ लिख सकता हूँ......मैं सम्पादकके निकट अपनी लिखी चीजोंकी परीक्षा नहीं करा सकता। यह मेरे लिये असाध्य है। हाँ, रवि बाबूको छोड़कर।

३

[फणीन्द्रनाथ पालको लिखित]

डी. ए. जी. का दफ्तर
रंगून, जनवरी १९१३

फणीबाबू, आप लोग कैसे हैं? बराबर चिट्ठी देना न भूलें। मेरे लिये जो कुछ संभव है करूँगा। उपीन कहाँ है? भवानीपुर कब आयेगा? मुझे 'चन्द्रनाथ' कब भेजेगा? मुझे क्या करना होगा, आप बतलायें। नहीं बतलाने पर मुझसे विशेष काम काज नहीं होगा। आनेके बादसे मैं पेचिस और बुखार भुगत

रहा हूँ। नहीं तो अब तक शायद कुछ लिखता। फिर भी एक चिट्ठी लिखें। सौरीनको मेरी बात याद दिला दें। —शरत्

रंगून (माघ) १९१३

प्रिय फणीन्द्रबाबू, 'रामकी सुमति' कहानीका अंतिम हिस्सा भेज रहा हूँ। उसके संबंधमें आपसे कुछ कहना जरूरी समझता हूँ। कहानी कुछ बड़ी हो गई है। शायद एक बारमें प्रकाशित नहीं हो सकेगी। लेकिन हो सके तो अच्छा होगा। जरा छोटे टाइपमें छापनेसे और दो एक पृष्ठ अधिक देनेसे हो सकती है। छोटी कहानीको क्रमशः छापनेसे उतना अच्छा नहीं होता। विशेषतः आपकी पत्रिकाका अब जरा प्रसार होना चाहिये। यद्यपि मेरी छोटी कहानी लिखनेकी आदत आजकल कुछ कम हो गई है। पर आशा करता हूँ कि दो एक महीनेमें अभ्यास ठीक हो जायेगा। मैं प्रतिमास छोटी कहानी १०, १२ पृष्ठोंकी और निबंध भेजूँगा। कहानी अवश्य ही, क्योंकि आजकल इसका समादर कुछ अधिक है......

अगली बार जिसमें कहानी छोटी हो इधर ध्यान रखूँगा। एक बात और। आप समाजपतिसे मेल रखें। उनकी पत्रिकामें अगर आपकी पत्रिकाकी थोड़ी बहुत आलोचना रहे, तो अच्छा होगा। इस बारके 'साहित्य'में मेरे नामसे न जाने क्या कूड़ा करकट छापा है। यह क्या मेरा लिखा हुआ है? मुझे तो तनिक भी याद नहीं है, और अगर है भी तो उसे छापा क्यों? आदमी बचपनमें बहुत कुछ लिखता है, तो क्या उसे प्रकाशित करना चाहिये? आपने 'बोझा' छाप कर मुझे मानो लज्जित कर दिया है। उसी तरह समाजपतिने भी मानो उसे छापकर मुझे लज्जित किया है। अगर उपीनको चिट्ठी लिखें तो यह अनुरोध अवश्य कर दें कि मेरी रायके बगैर कुछ भी न छापें। आवश्यक होनेपर मैं कहानियाँ बहुत लिख सकता हूँ—आपकी पत्रिका तो नन्ही-सी है। उस तरहकी तिगुनी चौगुनी पत्रिकाको अकेले ही भर दे सकता हूँ। इसके अलावा मेरे लिये एक सुभीता और है। कहानीके अलावा सभी प्रकारके विषयोंपर निबंध लिख सकता हूँ।

अगर आपको जरूरत हो तो लिखें। कोई भी विषय हो मैं तैयार हूँ। 'रामकी सुमति' कई बारमें छापेंगे या एक बारमें, मुझे लिखें। तब तो चैत्रके लिये और लिखनेकी आवश्यकता नहीं होगी।

'चरित्रहीन' प्रायः समाप्तिपर है। पर प्रातःकालको छोड़कर रातको मैं नही लिख पाता। रातको मैं लेटकर पढ़ता हूँ।...

एक बात और। आप 'यमुना' में प्रकाशनार्थ उपन्यास, कहानी और निबन्ध छापनेके पहले मुझे एक बार दिखा लें, तो बड़ा अच्छा हो। यही समझिये कि चैत्रके लिये जिन चीजोंको छाँटा है, उन्हें इस समय अर्थात् महीने भर पहिले यदि मुझे भेज दें, तो मैं चीजोंको छाँट दिया करूँ। पौषकी 'यमुना' बहुत अच्छी नहीं हुई है। अन्तिम कहानी अच्छी नहीं बनी है। हाँ, इससे आपपर खर्च पड़ जायेगा (डाक-टिकट). लेकिन पत्रिका अच्छी हो उठेगी। इधरसे वापस करनेका खर्च मैं दूँगा। लेकिन निबन्धोंको भेज देनेपर मैं जरा देख लूँ, ऐसी इच्छा होती है। पहिले ही कह चुका हूँ, मैं केवल कहानियाँ ही नहीं लिखता, सब तरहका लिख सकता हूँ। हाँ, कविता नहीं लिख पाता। अच्छा आप सौरीन बाबूके जरिए या उपीन, सुरेन, गिरीनसे कहकर निरुपमादेवीकी रचना—कविता लेनेकी चेष्टा क्यों नहीं करते? उनके बड़े भाई विभूतिको शायद आप भी पहिचानते हैं। उनको लिखने पर निरुपमासे निबन्ध अथवा कविता तो मिल ही सकती है। बहुतोंसे उनकी कविता और निबन्ध अच्छे होते हैं।

मुझसे जितना उपकार हो सकेगा, अवश्य ही करूँगा। वचन दिया है, उसके अनुसार काम भी करूँगा। साहित्यके अंदर जितनी भी नीचता क्यों न प्रवेश करे, इधर अब भी वह नहीं आई है। इसके सिवा यह मेरा पेशा नही हैं। मैं पेशेवर लेखक नहीं हूँ। और कभी होना भी नहीं चाहता।

मैं जरा नजदीक होता, तो आपको सुभीता हो सकता था। लेकिन इस देशको मैं शायद किसी भी तरह नहीं छोड़ सकूँगा। मैं मजेमें हूँ। खामख्वाह मुश्किलमें नहीं जाना चाहता, और जाऊँगा भी नहीं। अपनी बात यहीं तक।

अगले वर्षसे यदि आप पत्रिकाको कुछ बड़ी कर सकें, कुछ मूल्य बढ़ा कर, तो चेष्टा करें। प्रत्येक अंकमें पढ़नेके लायक चीजें रहेंगी, इसे स्पष्ट

कर दें। इसी लिये कहता हूँ कि कहानियोंको एक ही अंकमें छापना अच्छा होता है। जरा कुछ क्षति उठाकर भी उसमें बहुत कुछ विज्ञापन जैसा होगा।

उपेनने मुझे कई बार लिखा कि वह 'चन्द्रनाथ' भेज रहा है। लेकिन अभी तक नहीं मिला। शायद उसे नहीं मिल रहा है। अगर आप 'चन्द्रनाथ'को छापना चाहें, तो मैं उसे नये सिरेसे लिख दूँगा। भवानीपुरके सौरीनके मुँहसे मैंने सुन लिया है कि कैसी चीज है। मुझे कुछ कुछ याद भी है। अतएव नये सिरेसे लिख देना मुश्किल नहीं है। अगर आपको इस तरहकी नई रचनायें चाहिये, तो मुझे सूचित करें। —शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय

रंगून १२-[illegible]-१३

प्रिय फणी बाबू, अभी अभी आपका पत्र मिला। पहिली बात—'बंगवासी'-में क्रोड़पत्र आदि निकालकर निरर्थक फिजूलखर्ची न करें। आप जरा भी न घबड़ायें। आपकी पत्रिकामें अगर अच्छी चीज रहती है, तो आज हो या कुछ दिनोंके बाद हो, यह बात अपने आप प्रचारित हो जायेगी। कोई रोक नहीं सकेगा। आपको कोई डर नहीं। प्रचार करके ग्राहक इकट्ठा करना क्रोड़पत्र देकर रुपया बरबाद करनेसे कहीं अच्छा है।

दूसरी बात–'रामकी सुमति'को छोटे टाइपमें एक ही बारमें छापना अच्छा होगा। इस तरहकी छोटी कहानियोंको क्रमशः छापना अच्छा नहीं होता। जो कुछ भी हो, जब नहीं हुआ तो उसकी आलोचना वृथा है। मैं दो दिनोंके अंदर ही एक कहानी और भेजूँगा। आपका उत्तर मिलनेपर भेजूँगा। मेरी रायमें 'रामकी सुमति'से यह अच्छी होगी, पर दुखकी बात यह है कि प्रायः उसी तरह बड़ी हो गई है। बड़ी कोशिश करनेपर भी छोटी नहीं हो सकी। भविष्यमें चेष्टा कर देखूँगा कि क्या होता है।

तीसरी बात—'चन्द्रनाथ'को लेकर शायद कुछ बखेड़ा है। इसीलिये कहता हूँ कि उससे कोई फायदा नहीं। 'चरित्रहीन' प्रकाशित किया जा सकेगा। हाँ, उसके लिये पत्रिका कुछ बड़ी करनी चाहिये, लेकिन मूल्य

कितना होगा और कबसे बढ़ायेंगे, यह लिखें। मूल्य बढ़ाये बगैर पत्रिका बड़ी करके घरका आटा गीला करना ठीक नहीं होगा।

चौथी बात—समाजपतिसे अनबन न करें, यही कहा है। उनकी खुशामद करनेके लिये नहीं कहा। फणीबाबू, आपकी दूकानका माल अगर खरा है, तो आज हो या चार दिन बाद, खरीददार जमा होंगे ही। माल अच्छा नहीं होने पर हजार कोशिश करने पर भी दूकान नहीं चलेगी। दो चार दिनमें हो या महीनेमें, दिवाला पिट ही जायेगा।

मेरे बचपनकी ऊल-जलूल रचनाओंको छापकर मुझे कितना लज्जित किया जा रहा है और मेरे साथ कितना अन्याय किया जा रहा है, इसे मैं लिखकर व्यक्त नहीं कर सकता। समाजपतिने समझदार होनेपर भी इस तरहकी रचना कैसे छाप दी, यह अचरजकी बात है।

पाँचवीं बात—सौरीन बाबूसे आपका मेल-जोल कैसा है। उन्होंने क्या मेरी 'दीदी' की आलोचना देखी है? शायद खूब गुस्सा हुए होंगे, न? लेकिन मेरा दोष क्या? जिन्होंने लिखा है वही जिम्मेदार हैं। इसके अलावा इन रचनाओंको उन्होंने छोटे टाइपमें छापा है न?

छठी बात—मेरी नई कहानी (जिसे मैं दो एक दिनमें ही भेजूँगा) किस महीनेमें छापेंगे? चैत महीनेमें 'रामकी सुमति' खत्म होगी। अतएव उस महीनेमें नहीं, वैशाखमें दें। लेकिन जिस महीनेमें भी दें, छोटे टाइपमें छापनेपर जगह कम लगेगी। यद्यपि ग्राहकोंको पढ़नेकी चीज अधिक मिलेगी।

सातवीं बात—वैशाखसे पत्रिका सर्वांगसुन्दर होनी चाहिये। चित्रके पीछे काफी रुपया बरबाद नहीं करके, उन रुपयोंको किसी और तरीकेसे पत्रिकामें लगाया जा सके, तो अच्छा होगा। हाँ, मैं नहीं जानता कि ग्राहक चित्र चाहते हैं या नहीं। अगर फेशन यही है तो निश्चय ही देना होगा। आप मुझे निबन्ध कहानी आदिके चुनावमें जरा-सा स्थान दें, तो अच्छा हो। मैं देख सुन लिया करूँ। मुलाहिजेमें आकर या नाम देखकर कूड़ा करकट देना बुरा है।

आठवीं बात—श्रीमती निरूपमा देवी अगर कृपा करके अपनी रचना

आपको देती हैं तो अवश्य ही अच्छी बात है। उनकी कविता लिखनेकी शक्ति अपूर्व है। श्रीमती अनुरूपा देवीकी रचना पाना शायद दुःसाध्य है। वह 'भारती' में लिखती हैं। आपके यहाँ लिखेंगी कि नहीं, यह कहा नहीं जा सकता। लिखनेपर भी शायद नाक भौंह सिकोड़कर जैसा तैसा लिखेंगी। यह सब बड़ी लेखिकायें हैं। इनकी शायद 'यमुना' जैसी छोटी पत्रिकामें लिखनेकी प्रवृत्ति ही नही होगी। पर जरा कोशिश कर देखें। मिल जाय तो अच्छा ही है और न मिले तो भी अच्छा है। मेरे तीन नाम हैं—

आलोचना निबंध इत्यादि—अनिला देवी
छोटी कहानियाँ—शरत्चंद्र चट्टोपाध्याय
बड़ी कहानियाँ—अनुपमा

सब कुछ एक ही नामसे देनेपर लोग समझेंगे कि इनके पास इस आदमीके सिवा और कोई नहीं है।

यहाँ मेरे एक मित्र हैं, उनका नाम है प्रफुल्ल लाहिड़ी बी० ए०। अच्छे दार्शनिक हैं। निबंध बहुत अच्छा लिखते हैं। हाँ, नाम नहीं है, क्योंकि किसी मासिक पत्रिकाके लेखक नही हैं। मैंने इनसे अनुरोध किया है आपकी 'यमुना' में लिखनेके लिये। लेख मिला तो भेज दूँगा।

असुविधा यह है कि 'यमुना'का आकार छोटा है। इसमें अधिक प्रयास नहीं चल सकता, दाम भी कम है। अचानक दाम बढ़ानेकी चेष्टा कहाँ तक सफल होगी, यह नहीं कहा जा सकता। अगर नितान्त ही सम्भव न हो, तो कुछ दिनोंके बाद चार महीनेसे ग्राहकोंका मत लेकर और यह सिद्ध करके कि अधिक दाम देकर वे घाटेमें नहीं रहेंगे मूल्य और आकारमें क्या वृद्धि नहीं की जा सकती? आप खुद बहुत ढीले आदमी हैं। लेकिन ऐसा करनेसे नहीं चलेगा। आपने जब और दूसरा कुछ नहीं करनेका फैसला किया है, तो इसी चीजको जरा विशेष श्रद्धाकी नजरोंसे देखनेकी चेष्टा करें और जिसे 'सांसारिक बुद्धि' कहते हैं उसकी भी अवहेलना न करें। 'प्रवासी' आदि किसी समयकी छोटी पत्रिकाएँ अब कितनी बड़ी हो गई हैं। आपने मुझे पुरुष-लेखकोंकी आलोचना लिखनेको कहा है। लेकिन मेरे पास बंगला पुस्तकें नहीं हैं। मासिक पत्रिका एक भी नहीं लेता। मुझे कहाँ क्या मिलेगा

कि आलोचना लिखूँ। लिखनेसे लोगोंकी दृष्टि अवश्य ही आकर्षित होती है और एक बहस छिड़नेका उपक्रम हो जाता है। मैं यह जानता हूँ। अगर यही होता है तो भी चिन्ताकी कोई बात नहीं। मेरी आलोचनामें अगर गलती रहती है और अगर उसे कोई सिद्ध कर सके (कर सकना यद्यपि कठिन है) तो वह भी अच्छी बात है।

यहाँ मुझे एक बात और कहनी है। मेरी लिखाई-पढ़ाईमें कुछ क्षति हो रही है। सबेरेका पूरा वक्त किसी दिन आपके लिये और किसी दिन 'चरित्रहीन'के लिये नष्ट हो रहा है। हाँ, पढ़नेको रात मिलती है। लेकिन नोट करना इत्यादि नहीं हो पा रहा है। कई दिनोंसे एक और बात सोच रहा हूँ। कभी कभी इच्छा होती है कि हर्बर्ट स्पेंसरके पूरे समन्वयात्मक दर्शन (Synthetic Philosophy) की एक बंगला समालोचना—नहीं अलोचना—और यूरोपके अन्यान्य दार्शनिक जो स्पेंसरके शत्रु-मित्र हैं, उनकी रचनाओंपर एक बड़ा धारावाहिक निबन्ध लिखूँ। हमारे देशकी पत्रिकाओंमें केवल अपने सांख्य और वेदान्त, द्वैत और अद्वैतके अलावा और किसी तरहकी आलोचना नहीं रहती। इसीलिये बीच-बीचमें यह इच्छा होती है। क्या करूँ, बतलाइये? अगर आपकी पत्रिकामें स्थान न हो (होना संभव नहीं) तो इस तरहकी कोई पत्रिका बतला सकते हैं, जो छाप सकती है?

आप मुझे बराबर चिट्ठी लिखा करें। नहीं लिखनेसे मुझमें मानों इच्छा नहीं रह जाती। इसे भी एक काम समझें। रचनाएँ रजिष्ट्री करके ही भेजूँगा। खर्च आप क्यों देंगे? मेरी ऐसी बुरी दशा नहीं है कि इसके लिये खर्च लेना पड़े। ये बातें फिर न लिखें।

आशीर्वाद देता हूँ, आपकी दिनोंदिन श्रीवृद्धि हो—यही मेरा पारितोषिक हो।

'चन्द्रनाथ' अब न माँगें। अगर आवश्यकता हुई तो मैं फिर लिख दूँगा। वह रचना अच्छी छोड़कर बुरी नहीं होगी।

मेरे तीन तरहके नामोंके बारेमें आपकी क्या राय है? मेरा ख्याल है, इससे सुभीता होगा। एक नामसे अधिक लिखना अच्छा नहीं। क्यों?

उपेन्द्र क्या कहता है? वह तो चिट्ठी पत्री लिखनेका नहीं। उसके रहनेसे

बहुत सुभीता था, नहीं रहनेसे काफी परेशानी होती है। उस व्यक्तिका आपके प्रति अत्यधिक स्नेह था। उससे काम करा सकें, तो चेष्टासे बाज़ न आयें।

जो कुछ भी हो और जैसा भी हो, घबराएँ नहीं, और चिन्तित न हों। मैं आपको छोड़कर कहीं जाऊँगा या किसी लोभसे जानेकी चेष्टा करूँगा, इस तरहकी बात कभी मनमें भी न लाएँ।...मेरा सब कुछ ही दोषोंसे भरा नहीं है।

आप पहले इस विषयमें मुझे सतर्क करनेके लिये पत्रमें लिखते थे कि दूसरी पत्रिकावाले मुझसे अनुरोध करेंगे। भले ही करें, खैरात घरसे शुरू होती है (Charity begins at home), सच है न ? जरा जल्दी जवाब दें। मेरा आशीर्वाद लें। इति। —शरत्चन्द्र चट्टो०

[चैत्र १३१९]

प्रिय फणीबाबू, आपके निबन्ध वापिस भेजे हैं। दोनों निबन्ध बुरे नहीं हैं, दिये जा सकते हैं। चक्षुपर लिखा निबन्ध अच्छा है।

'चन्द्रनाथ'को लेकर बड़ी गड़बड़ी हो रही है। अनजाने और हाथमें पाये बगैर विज्ञापन आदि देना परले सिरेकी नादानी है। वे सारा 'चन्द्रनाथ' नहीं देंगे। उसके लिये बेकार चेष्टा न करें। पर कुछ कुछ नकल करके भेजेंगे। मेरी तनिक भी इच्छा नहीं है कि मेरी पुरानी रचनाएँ ज्योंकी त्यों प्रकाशित हों। बहुत गलतियाँ हैं। उन्हें सुधारनेका मौका मिले तो छप सकती हैं, अन्यथा हरगिज नहीं। एक 'काशीनाथ'को लेकर मैं काफी लज्जित हुआ हूँ। इष्ट मित्रोंसे फिर इस तरहकी लज्जा मिले, यह मैं नहीं चाहता। उन्होंने अवश्य ही मेरी मंगल-कामना की है। लेकिन मेरा मत सोलहों आने बदल गया है। 'चन्द्रनाथ'को बन्द रक्खें। 'चरित्रहीन'को ज्येष्ठ महीनेसे शुरू करें और 'चन्द्रनाथ' बैसाखसे शुरू हो गया हो (हाँ, उस हालतमें दूसरा चारा नहीं), तो मुझे बाकी हिस्सेका परिवर्त्तन-परिवर्जन इत्यादि करना ही होगा। बैसाखमें कितना छपा है देख लेने पर मुझे बाकी हिस्सा न मिला तो भी थोड़ा थोड़ा करके लिख दूँगा। अगर बैसाखमें न छपा हो, तो 'चरित्रहीन' छपेगा।

मैं 'चरित्रहीन'के लिये बहुतेरी चिट्ठियाँ पा रहा हूँ। कोई रुपयेका लोभ, कोई सम्मानका लोभ, कोई दोनों ही, कोई मित्रताका अनुरोध भी कर रहे हैं। मुझे कुछ भी नहीं चाहिये। आपसे कहा है कि आपका जिसमें मंगल होगा वही करूँगा। मैं बात नहीं बदलता।

आप कृपा कर इस पते पर फाल्गुन, चैत और बैसाखकी 'यमुना' भेजें— बी. प्रमथनाथ भट्टाचार्य, १९ युगलकिशोरदास लेन, कलकत्ता।

ये लोग अर्थात् गुरुदास बाबूके पुत्र अपनी नई पत्रिकामें मेरी रचनाओंके लिए विशेष चेष्टा कर रहे हैं। हाँ, मेरे प्रियतम मित्र प्रमथकी खातिर। लेकिन वह बात मेरी है। जो कुछ भी हो फाल्गुन-चैत्रकी 'यमुना' उनको दें। उन्होंने और उनके दलने मेरे 'काशीनाथ'के सम्बधमें कुछ गुप्त समालोचना की है। और एक बात यह है कि 'यमुना'को छोड़कर मैं और किसी पत्रिकामें नियमित रूपसे नहीं लिखूँगा। इससे भी एक काम बनेगा। मेरी रचनाओंकी अवहेलना करनेकी हिम्मत उन्हें भी नहीं होगी। मैं मूर्ख नहीं हूँ, इस बातको प्रमथ जानता है।

निरुपमाको अपने दलमें खींचनेकी चेष्टा करना। वह सचमुच ही अच्छा लिखती हैं। और बाजारमें नाम भी है। बहुधा और अधिकांशमें मुझसे उनकी रचनाएँ अच्छी होती हैं—ऐसी मेरी धारणा है। इस बीचमें 'मानसी'के श्रीयुत फकीर बाबूसे अगर मुलाकात हो, तो कहें कि उनका पत्र मिला और शीघ्र ही उत्तर दूँगा। मुझे भी बुखार है। इसीलिये पत्र नहीं दे पा रहा हूँ—शीघ्र दूँगा।

क्या आप एक बात बतला सकते हैं? और कितने दिनोंतक 'साहित्य' पत्रिकामें मेरा श्राद्ध होता रहेगा? लोग शायद सोचेंगे कि मुझमें लिखनेकी क्षमता 'काशीनाथ' से अधिक नहीं है। इससे नाम बिगड़ता है। उपीन बेचारेको शायद इस बातका ख्याल भी नहीं है। फिर भी उसने मेरी आन्तरिक हितकामनाके लिये ही ऐसा किया है, इसीलिये किसी तरह सह लिया। और दूसरा चारा नहीं। पर पूछता हूँ, क्या उनके पास उस तरहकी कहानियाँ और हैं? अगर हैं तो देखता हूँ मुसीबतमें पड़ूँगा। आपसे एक बात और कह दूँ। उस दिन गिरीनकी चिट्ठी मिली। 'चन्द्र-

नाथ 'को लेकर उन लोगोंसे उपेनकी कहा-सुनी हो गई है। वे लोग यद्यपि आपके विरुद्ध नहीं हैं, तथापि इस घटनासे और 'काशीनाथ 'के 'साहित्य'में प्रकट होनेके कारण वे लोग 'चन्द्रनाथ' को देनेके लिये तैयार नहीं। वे लोग मेरी रचनाओंको बहुत चाहते हैं। उन्हें डर लगा रहता है कि कहीं खो न जाय और कहीं किसी दूसरी पत्रिकावालेके हाथोंमें न पहुँच जाय, इसलिये सुरेनने थोड़ा थोड़ा हिस्सा नकल करके भेजनेका इरादा किया है। अगर बैसाखमें 'चन्द्रनाथ' छप गया है, तो मुझे चिट्ठीसे या तारसे 'हाँ-ना' लिख भेजें। तब मैं सुरेनसे एक बार फिर अनुरोध कर देखूँगा। यह कहकर अनुरोध करूँगा कि दूसरा चारा नहीं है, देना ही होगा। अगर छपा नहीं है तो अच्छा ही है क्यों कि तब 'चरित्रहीन' छप सकेगा।

मुझे कहानियाँ और निबन्ध भेजें। बाकी चीज़ें आप ही देख दें। जैसी तैसी कहानियाँ कमसे कम मेरा हाथ रहते न छपें, यही मेरा अभिप्राय है।

बहुत जल्दीमें चिट्ठी लिख रहा हूँ (कामके बीच ही), इसीलिये सारी बातें गहराईसे नहीं सोच पा रहा हूँ। लेकिन जो कुछ लिख रहा हूँ उसे ठीक समझें।

द्विजू बाबूको संपादक बनाकर बड़ी सज-धजके साथ हरिदास बाबू पत्रिका निकाल रहे हैं। अच्छी बात है। वे रुपया देंगे, अतएव रचनायें भी अच्छी मिलेंगी। इसके अलावा बड़ोंकी मदद करनेके लिये सभी तैयार रहते हैं, यही संसारकी रीति है। इसके लिये सोचने विचारनेकी आवश्यकता नहीं है।

जेठके लिये जो कुछ भेजना है उसे बैसाखके पहले हफ्तेके अन्दर ही भेज दूँगा। केवल 'चन्द्रनाथ'के बारेमें चिन्तित रहा। वह कैसी कहानी है, शैली कैसी है, जाने बगैर छापना उचित नहीं, इस बातका डर लग रहा है। जो कुछ भी हो बहुत जल्द ही इस विषयमें सूचना पानेकी आशामें हूँ।

तबीयत ठीक नहीं है। कल रातसे ही बुखार-सा है। बढ़े न तभी अच्छा है। आपकी तबीयत कैसी है? बुखार ठीक हुआ? इति।

आप लोगोंके स्नेहका—शरत्

---

१४ लोअर पोज़ाऊँ-डाऊङ्ग स्ट्रीट,

रंगून, ३. ५. १३.

प्रिय फणीबाबू, आपका पत्र मिला और प्रेषित मासिकपत्र, अर्थात् 'प्रवासी' 'मानसी' 'भारती', 'साहित्य' इत्यादि सभी मिले। 'चन्द्रनाथ'में जो कुछ परिवर्त्तन उचित समझा किया और भविष्यमें भी ऐसा ही करूँगा। कहानीके तौर पर 'चन्द्रनाथ' बहुत मधुर कहानी है लेकिन अतिरेकसे पूर्ण है। लड़कपन अथवा नौजवानीमें इस तरहकी रचना स्वाभाविक होनेके कारण ही शायद ऐसा हुआ है। जो कुछ भी हो अब जब हाथमें आ गया है, तो इसे अच्छा उपन्यास बना डालना ही उचित है। कमसे कम दूना बढ़ जाना ही सम्भव है। प्रतिमास बीस पृष्ठ देनेसे क्वारके पहले समाप्त होगा कि नहीं इसमें सन्देह है। इस कहानीकी विशेषता यह है कि किसी प्रकारकी अनैतिकतासे इसका सम्बन्ध नहीं। सभी पढ़ सकेंगे। 'चरित्रहीन' कलाके तौर पर और चरित्र-निर्माणके तौर पर अवश्य ही अच्छा है। लेकिन इस तरहका नहीं। 'चरित्रहीन'के लिये प्रमथ लगातार तगादा कर रहा था। लेकिन आखिरके तगादे इस तरहके हो गए थे कि आजन्मकी मित्रता अब जाय कि तब। इसी डरसे उसके पढ़नेके लिये 'चरित्रहीन' भेज दिया है। हाँ, यह मैं नहीं जानता कि उसके मनके भाव क्या हैं। लेकिन अपने मनके भावोंको उसे साफ साफ लिख दिया है। उसका जवाब अभी तक नहीं मिला है। आने पर लिखूँगा। मुझमें और आपमें स्नेहका सम्बन्ध बहुत गहरा है। मेरी उम्र हो गई है। इस उम्रमें जो कुछ बनता है उसे मर्जीके अनुसार नष्ट नहीं करता। आप मेरे बारेमें व्यर्थ ही क्यों चिन्तित होते हैं! 'यमुना'की उन्नतिकी ओर मेरा सबसे अधिक ध्यान है, इसके बाद और कुछ। 'चरित्रहीन' वही आधा लिखा पड़ा है। क्या होगा यह भी नहीं जानता। कब समाप्त होगा यह भी नहीं बता सकता। 'चन्द्रनाथ' जिसमें अच्छा बनकर इस वर्ष प्रकाशित हो, इसकी चेष्टा करनी ही है। क्यों कि उसे इसके पूर्व ही प्रकट किया गया है। इस साल जिसमें 'यमुना' अपेक्षाकृत अधिक प्रसिद्ध हो सके, इसकी चेष्टा सबसे अधिक आवश्यक है। इसके बाद अर्थात् अगले वर्षसे आकार और भी बढ़ा देना होगा। इस वर्ष

ग्राहक कितने हैं? पिछले सालसे कम या अधिक, यह लिखें। अगर मैं दूसरी पत्रिकाओंमें लिखकर नामको अधिक प्रचारित कर सकता, तो 'यमुना'का उपकारके सिवा अपकार नहीं हो सकता। लेकिन बीमारीके कारण लिख ही नहीं पाता और वह होगा भी नहीं। जल्दबाजी करनेसे नहीं चलेगा फणीबाबू, शान्त होकर विश्वास रखकर आगे बढ़ना होगा। मैं बराबर आपके काममें लगा रहूँगा। लेकिन मेरी शक्ति बहुत ही कम हो गई है, परिश्रम नहीं कर सकता। एक आलोचना और लिख रहा हूँ, दो तीन दिनमें ही समाप्त होगी, ऋतेन्द्र ठाकुरके विरुद्ध। (शायद जरा अधिक कड़ो हो गई है।) फाल्गुनके 'साहित्य'में उन्होंने उड़ीसाकी खोंद जातिके सम्बन्धमें एक निबन्ध लिखा था, वह शुरूसे आखिर तक गलत है। पुरातत्त्वके बारेमें (नाम कमानेके लिये) ऊल-जलूल नहीं लिखना चाहिये, मेरी आलोचनाका यही उद्देश्य है। नहीं जानता, ऋतेन्द्र ठाकुरसे 'यमुना'का सम्बन्ध कैसा है। उचित समझें तो छापें, नहीं तो 'साहित्य'को दे दें। नहीं, वह कहानी आज भी नहीं मिली। निरुपमा देवीकी कोई रचना मिली क्या? उन्हें किसी चीज़की जिम्मेदारी दे सकें तो बहुत अच्छा हो। हाँ, सौरीन बाबू अगर मेरी अनुपस्थितिमें मेरा भार ले लें, तो अच्छा ही हो। शायद निरुपमा भी बहुत-सा भाग ले सकती हैं। सुरेन, गिरीन, उपीन भी। पर ये लोग निबन्ध लिख सकेंगे कि नहीं, यह नहीं जानता। निबन्ध लिखनेके लिये आदमी अगर जरा पढ़ा लिखा हो तो अच्छा होता है, क्यों कि इससे मनको बल मिलता है। किस्सा कहानी अगर वे लिखें, तो मैं केवल निबन्धोंमें ही पड़ा रहूँ। कहानी लिखना वैसा आता भी नहीं और लिखना उतना अच्छा भी नहीं लगता। उम्र हो गई है, अब जरा विचारपूर्ण कुछ लिखनेकी साध होती है। मेरा कहानी लिखना बहुत कुछ जबर्दस्ती लिखना है। जोर-जबर्दस्तीसे काम वैसा मुलायम नहीं होता। प्रमथकी अन्तिम चिट्ठी साथ भेज रहा हूँ। मेरा नाम 'अनिलादेवी' है, यह कोई न जानने पावे। मैं ही हूँ, इसका अनुमान लगाकर प्रमथने डी. एल. रायसे कहा है। उसे कड़ी चिट्ठी लिखना।

आपकी पत्रिकाको मैं अपनी ही पत्रिका समझता हूँ। इसको क्षति पहुँचाकर कोई काम नहीं करूँगा। केवल प्रमथको लेकर ही मैं संकटमें पड़ा हूँ। वह भी

परिचित ही नहीं, परम बन्धु, सदाका अति स्नेहका पात्र है। इसीसे जरा चिन्तित होता हूँ, नहीं तो क्या। प्रमथकी चिट्ठीसे बहुत-सी बातें समझ सकेंगे। इस समय ज्वर १०२·५ है। ज्वर रंगूनमें नहीं होता है, लेकिन मुझे ज्वर होता है दूसरे कारणोंसे—शायद हृदयसे सम्बन्धित है। इस देशका साधारण स्वास्थ्य अच्छा ही है। लेकिन मुझे बरदाश्त नहीं हो रहा है। इति।

आपका—शरत्

---

२८ मार्च १९१३

प्रिय फणीबाबू, अभी अभी आपका रजिष्ट्री पैकेट मिला। अगर रजिष्ट्री करते हैं, तो घरके पतेपर क्यों भेजते हैं? आफिसका पता ही ठीक है क्योंकि डाकिया जब घरपर जाता है तो मैं आफिसमें रहता हूँ। अगर गैर-रजिष्ट्रीसे भेजते हैं, तो घरके पतेपर भेजें। दोनों निबन्धोंको देखकर शीघ्र भेज दूँगा। बैसाखके लिये बड़ी गड़बड़ी दिखाई पड़ रही है। जो कुछ भी हो इस महीनेको इस तरह चलाएँ—(१) पथनिर्देश, (२) नारीका मूल्य और अन्यान्य निबन्ध आदि। 'चन्द्रनाथ' न छापें। क्यों कि अगर छापनेके ही योग्य हो तो क्रमशः छापना होगा। जेठ महीनेसे 'चरित्रहीन' या 'चन्द्रनाथ' और भी बड़े और अच्छे रूपमें क्रमशः छापें। देखूँ, सुरेन गिरीनको क्या जवाब देता है। बैसाखके लिये कोई खास सूरत निकलती नजर नहीं आती। हाँ, आपका मेरे ऊपर दावा सर्व प्रथम है, इसमें सन्देह नहीं। मैं जब तक जीवित हूँ आपको अधिक कष्ट नहीं पाना पड़ेगा; लेकिन भाई, मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं है। इसके अलावा किस्सा कहानी लिखनेकी प्रवृत्ति नहीं होती। मानों मुसीबतमें पड़कर मुझे कहानी लिखनी पड़ती है। फिर भी लिखूँगा—कमसे कम आपके लिये। सचमुच ही इस बीच कहानी लिख भेजनेके लिये बहुतसे अनुरोध आये हैं। लेकिन मैं प्रायः निरुपाय हूँ। उतनी कहानियाँ लिखने बैठूँ तो मेरा लिखना पढ़ना बन्द हो जाय। मैं प्रतिदिन दो घण्टेसे अधिक कभी नहीं लिखता। दस-बारह घण्टे पढ़ता हूँ। यह क्षति मेरी अपनी है। यह मैं हरगिज नहीं करूँगा। जो कुछ भी हो आपका

बैसाख गड़बड़ीसे किसी तरह निकल जाय। इसके बादवाले महीनेसे देखा जाएगा। देखिये, पहले आपके ग्राहक क्या कहते हैं; उसके बाद समझकर काम करना होगा। मेरा अहो भाग्य है कि आपकी माता भी मेरी टोह लेतीं हैं। उन्हें कह दें, मैं अच्छी तरह हूँ। आशा करता हूँ, सभी कुशल हैं। बैसाखका अंक अगर उतना अच्छा नहीं होता, तो पत्रिकामें जरा इस बातका उल्लेख कर दें कि मेरी एक कहानी प्रायः प्रतिमास रहेगी।

(मेरा पता आप जिसे तिसे क्यों दे देते हैं ?) मुझे बहुतेरे लोग बड़ी पत्रिकाओंमें लिखनेके लिये कहते हैं, क्यों कि उससे नाम अधिक होगा। आपकी पत्रिका छोटी है, कितने आदमी पढ़ते हैं ? हाँ, मैं भी इस बातको स्वीकार करता हूँ। लाभ नुकसानका विचार किया जाय, तो उन्हींकी बात सच है और साधारणतः सभी वैसा करते हैं। लेकिन मुझमें कुछ आत्म-संभ्रम भी है और कुछ आत्म-निर्भरता भी है। इसीलिये सब जिस रास्तेको सुभीतेका समझते हैं मैं उसे सुभीताका समझनेपर भी वही मेरा एक मात्र अवलंबन नहीं। अगर मैं चेष्टा करके छोटी पत्रिकाको बड़ा कर सकूँ, तो उसीमें लाभ समझता हूँ। इसके अलावा आपको बहुत कुछ आश्वासन दिया है; अब नीचकी तरह उसे अन्यथा नहीं करूँगा। मुझमें बहुतसे दोष हैं सही, पर मैं सोलहों आने दोषोंसे ही भरा नहीं हूँ। मैं बहुधा अपनी बातपर अडिग रहनेकी चेष्टा करता हूँ। आप चिन्तित न हों। मेरी यह चिट्ठी किसीको पढ़नेके लिये न दें। अगर बैसाखमें दिखाई पड़े कि ग्राहक घट नहीं बल्कि बढ़ रहे हैं, तो आशा करनी चाहिये कि आगे और भी बढ़ेंगे। 'पथ-निर्देश' पूरा एक ही बारमें छापें। क्रमशः न छापें। एक बात और। नारी वाले लेखमें छपाईकी बहुत गलतियाँ हैं। एक जगह अनुरूपाके बदले आमोदिनीका नाम छप गया है। 'भूमाके संग भूमिका' इत्यादि अनुरूपाका है, आमोदिनीका नहीं। निरुपमाको सन्तुष्ट रखकर उसकी अधिक रचनाएँ पानेकी चेष्टा करें। वह सचमुच ही अच्छा लिखती है। वह मेरी छोटी बहन भी है और छात्रा भी।

—शरत्

(अप्रैल १९१३)

प्रिय फणीबाबू, मेरी तरफसे आपको एक काम करना होगा। मैं प्रचलित मासिक पत्रिकाओंके बारेमें एक प्रकारसे कुछ भी नहीं जान पाता, इसलिये आलोचना नहीं लिख पाता। मैं उतना घटिया आलोचक नहीं हूँ। अतएव इस दिशामें जरा चेष्टा करूँगा—अवश्य 'यमुना' हीके लिये। इसलिये आपसे अनुरोध है कि मेरे लिये दो-तीन मासिक पत्रिकाएँ वी. पी. पी. से भेजनेकी चेष्टा करें। मैं छुड़ा लूँगा। 'प्रवासी' 'साहित्य' 'मानसी' 'भारती'। रचनाएँ देकर पत्रिकाओंको मुफ्तमें लेनेकी इच्छा नहीं। और उतनी रचनाएँ पाऊँ भी कहाँ ! हाँ, दो एक पत्रिकाएँ खातिरदारीमें मिल रही हैं। लेकिन इस खातिरदारीकी आवश्यकता नहीं। बल्कि लज्जित हो रहा हूँ कि वे लोग अपनी पत्रिका भेज रहे हैं और परिवर्तनमें मैं कुछ नहीं दे पा रहा हूँ। मुँह खोलकर इसे सूचित करनेमें भी लज्जा हो रही है। इन बातोंको सोचकर ही आपसे यह अनुरोध कर रहा हूँ। पता—१४ लोअर पोजाऊँग स्ट्रीट। बैसाखसे आवें तो बहुत अच्छा हो। मेरे क्लबमें पत्रिकाएँ आती हैं। लेकिन उनमें बड़ी असुविधा है। आपको अनेक प्रकारके अनुरोधोंसे बीच बीचमें तंग करूँगा। मेरा स्वभाव ही ऐसा है। बुरा न मानें। आप उम्रमें मुझसे बहुत छोटे हैं। छोटा भाई-सा ही समझता हूँ। इस लिये बेगार खटनेके लिये कहता हूँ। दूसरी डाकसे चिट्ठी और रचनाएँ भेजूँगा। इति। —शरत्

—१४ लोअर पोजाऊँग-डाऊँग स्ट्रीट,

रंगून (बैसाख १३२०)

प्रिय फणीबाबू, पिछली डाकसे 'चन्द्रनाथ' का कुछ हिस्सा भेजा है। अगली डाकसे कुछ हिस्सा और भेजूँगा। अत्यंत पीड़ित हूँ। जेठकी 'यमुना' के लिये विशेष चिन्तित हूँ। सिरका दर्द इतना अधिक है कि कोई काम नहीं कर पा रहा हूँ। अक्षरोंकी ओर देखनेमें कष्ट होता है। बाध्य होकर काम-काज लिखना-पढ़ना सब कुछ स्थगित रखा है। सौरीन बाबूको मेरा आन्तरिक स्नेहाशीर्वाद कह दें। इस

महीने तो किसी तरह चलाएँ। चंगा होनेपर आषाढ़के लिये कोई चिन्ता नहीं रहेगी। मैं सौरीनको चिट्ठी नहीं लिख सका। उन्होंने मुझे जो कुछ लिखा है, उसे पढ़कर सचमुच ही मुझे बड़ी खुशी हुई। मुझे निकट बुलाया है—देखूँ। जिसके ऐसे मित्र हैं वह बड़ा सौभाग्यशाली है। 'चरित्रहीन' को अर्धलिखित अवस्थामें ही प्रमथको पढ़नेके लिये भेजा है। बार बार जिद करनेके कारण मैं उसके अनुरोधकी उपेक्षा नहीं कर सका। वापिस मिलने पर बाकी हिस्सेको लिखूँगा। कहानी इस महीने नहीं लिख पाऊँगा। क्योंकि समय नहीं है। एक आलोचना लिखनेमें हाथ लगाया था, समाप्त न कर सका। समाप्त हुई तो आपके हाथोंमें पहुँचनेमें २६ तारीख हो जाएगी। अतएव इस महीनेमें काम नहीं आएगी। सचमुच ही बहुत चिन्तित हूँ। बहुतेरी चेष्टा करने पर भी नहीं लिख पा रहा हूँ। अगर कोई लिख लेनेवाला होता तो बोल देता। वैसा कोई नहीं मिलता। बैसाखकी 'यमुना' सचमुच ही अच्छी हुई है। सौरीनकी कहानी अच्छी है और निबन्ध भी अच्छा है। —शरत्

रंगून, १४-९-१९१३

प्रियवर, आपकी माता मेरे बारेमें पूछताछ करती हैं, मेरे लिये बड़े सौभाग्यकी बात है। उनसे कह दें, मैं बिल्कुल ठीक हो गया हूँ। मेरे बारेमें पूछताछ करनेवाला संसारमें एक प्रकारसे कोई नहीं है। इसलिये अगर कोई मेरे बारेमें भला-बुरा जानना चाहता है, तो सुनकर हृदय कृतज्ञतासे भर जाता है। मेरे जैसे हतभाग्य संसारमें बहुत ही कम हैं।...उपकार कर रहा हूँ, यश, मान, स्वार्थत्याग कर रहा हूँ, इत्यादि बड़े बड़े भाव मेरे हृदयमें कभी नहीं आते। कभी ये भी नहीं और आज भी नहीं हैं। वैसे यह बड़ी बात तो नहीं है। यशका भूखा होता तो उसके लिये शायद पहले ही चेष्टा करता, इतने दिनों तक चुप नहीं रहता।......और एक बात, शतद्वारी चण्डीपाठक होनेमें मुझे लज्जा भी आती है। एक पत्रिकामें नियमित लिखता हूँ, यही काफी है। जो मेरी रचनाएँ पसन्द करता है, वह इसी पत्रिकाको पढ़ेगा, यही मेरी धारणा है। इसके अलावा होमिओपैथीकी मात्रामें इसमें थोड़ा उसमें थोड़ा, कुछ अश्रद्धासे कुछ ऐसे-वैसे, तर्जुमा करके, दूसरेके भावोंको चुराकर—ये क्षुद्रताएँ

बचपनसे ही मुझमें नहीं है। और इतना लिखने जाऊँ तो पढ़ना बन्द करना पड़ेगा और पढ़ना मृत्युके सिवा मैं छोड़ नहीं पाऊँगा......। मेरी छोटी कहानियाँ जाने कैसे बड़ी हो जाती हैं, यह बड़ी मुश्किलकी बात है। एक बात और। मैं कोई उद्देश्य लेकर एक कहानी लिखता हूँ और उसके स्पष्ट हुए बिना नहीं छोड़ पाता। मैंने समझा था 'बिन्दोका लल्ला' आपको पसन्द नहीं आयेगा। शायद छापनेमें आगा-पीछा करियेगा। इसलिये कहीं मेरे मुलाहजेमें आकर, अपनी क्षति करके भी प्रकाशित कर दें, इस आशंकासे आपको पहलेसे ही सावधान किये दे रहा था। अर्थात् विश्वस्त होना चाहिये। अगर सचमुच ही अच्छी लगी हो, तो छापकर ठीक ही किया है। इससे पाठक कुछ भी क्यों न कहें। 'नारीका मूल्य' अगली बार समाप्त करके कुछ और शुरू करूँगा। 'नारीके मूल्य'की बहुत सुख्याति हुई है। मैंने उस तरहके चौदह 'मूल्य' लिखना तय किया है। इस बार या तो 'प्रेमका मूल्य' या 'भगवानका मूल्य' लिखूँगा। उसके बाद क्रमशः धर्मका मूल्य, समाजका मूल्य, आत्माका मूल्य, सत्यका मूल्य, सांख्यका मूल्य और वेदान्तका मूल्य लिखूँगा।......चरित्रहीनके चौदह पन्द्रह अध्याय लिखे हैं। बाकी दूसरी कापियोंमें या रद्दी कागजोंपर लिखे हैं, नकल करना होगा। इसके अन्तिम कई अध्यायोंको यथार्थमें grand बनाऊँगा। लोग पहले जो चाहे कहें; लेकिन अन्तमें उनका मत बदलेगा ही। मैं झूठी बड़ाई पसन्द नहीं करता और अपना वजन समझे बगैर बात नहीं करता। इसीलिये कहता हूँ कि अन्तिम हिस्सा सचमुच ही अच्छा होगा। नैतिक हो या अनैतिक, लोग जिसमें कहें, 'हाँ, एक चीज़ है।' और इसमें आपको बदनामीका डर क्या? बदनामी होगी तो मेरी। इसके अलावा कौन कहता है कि मैं गीताकी टीका लिख रहा हूँ? 'चरित्रहीन' इसका नाम है!—पाठकको पहलेसे ही इसका आभास दे दिया। यह सुनीतिसंचारिणी सभाके लिये भी नहीं है और स्कूल-पाठ्य भी नहीं है। अगर वे टाल्सटायके 'रिजरेक्सन'को एक बार भी पढ़ते हैं, तो 'चरित्रहीन' के विषयमें कहनेको कुछ भी नहीं रहेगा। इसके अलावा जो कलाके तौरपर, मनोविज्ञानके तौरपर महान् पुस्तक है, उसमें दुश्चरित्रकी अवतरणा रहेगी ही। क्या कृष्णकान्तके वसीयतनामेमें नहीं है? रुपया ही सब

कुछ नहीं है, देशका काम करनेकी जरूरत है। पाँच आदमियोंको यदि यथार्थमें सिखाया पढ़ाया जा सके, अनुदारताके अत्याचार आदिके विरुद्ध स्वर ऊँचा किया जाय, तो इससे बढ़कर आनन्दकी बात और क्या है ? आज लोग ऐसे क्षुद्र व्यक्तिकी बात न भी सुनें, लेकिन एक दिन सुनेंगे ही।...इसी संकल्पको लेकर मैंने एक समय साहित्य-सभा बनाई थी। आज मेरी वह सभा भी नहीं है और वह शक्ति भी नहीं है।—(युगान्तर, ३ माघ १३४४)

रंगून, १०, १०, १९१३

प्रियवर, तुम्हारी भेजी हुई 'बड़ी दीदी' मिली। बुरी नहीं हुई, पर वह बाल्य-कालकी रचना है। न छपती तो शायद अच्छा रहता।

आजकल मासिक पत्रोंमें जो छोटी कहानियाँ प्रकाशित होती हैं उनमें पन्द्रह आनाके बारेमें आलोचना ही नहीं हो सकती। वे न तो कहानियाँ हैं और न साहित्य ही। केवल स्याही और कलमकी फिजूलखर्ची और पाठकों-पर अत्याचार। इस बार......में इतनी कहानियाँ छपी हैं, लेकिन एक भी अच्छी नहीं है। अधिकांश ही अपठनीय हैं। किसीमें तत्त्व नहीं, भाव नहीं, केवल शब्दोंका आडम्बर, घटनाओंका समावेश, और जबरदस्ती Pathos; बूढ़ी वेश्याको युवती सजाकर लोगोंको भुलावेमें डालनेकी चेष्टा देखनेसे मनमें एक वितृष्णा, लज्जा अथवा करुणा होती है। इन लेखकोंकी ऐसी कहानियाँ लिखनेकी चेष्टा देख कर सचमुच ही मेरे मनमें इस तरहका एक भाव उत्पन्न होता है जो और कुछ भी क्यों न हो, स्वस्थ कदापि नहीं। छोटी कहानियोंकी आजकल कैसी दुर्दशा है।...

दो एक बातें 'चरित्रहीन'के संम्बन्धमें कह दूँ। इसके सम्बन्धमें कौन क्या कहता है, सुनते ही मुझे लिखना। इस पुस्तकके विषयमें लोगोंमें इतने प्रकारके अभिप्राय हैं कि इस सम्बन्धमें कुछ ठीक धारणा बनाना भी कठिन है। अनैतिक (immoral) तो लोग कह ही रहे हैं। लेकिन अँग्रेजी साहित्यमें जो कुछ वास्तवमें अच्छा है, उसमें इससे कहीं अधिक अनैतिक घटनाओंकी सहायता ली गई है। फिर भी साहित्यिकोंकी राय मुझे सूचित करना।...

(युगान्तर, ३ माघ, १३४४)

४

[श्री हेमेन्द्रकुमार रायको लिखित]

१४, लोअर पोज़ाउङ्ग डाउङ्ग स्ट्रीट,
रंगून, ता २०–३–१४

प्रिय हेमेन्द्रबाबू, बीचमें बहुत दिनोंतक रंगूनमें नहीं था, कुछ दिन पहिले लौटनेपर आपकी चिट्ठी मिली। पिछली डाकसे ही उसका जवाब देना उचित था। लेकिन उस वक्त शरीरकी हालत इतनी बुरी थी कि कहीं कुछ गलत न लिख बैठूँ, इस आशंकासे उत्तर नहीं लिखा। बुरा न मानें। शरीरके कारण मेरे लिए सर्वदा सहज भद्रता तककी रक्षा करना कठिन हो जाता है। पर भरोसा इस बातका है कि मैं बूढ़ा आदमी हूँ, आप लोगोंके सामने सदा ही क्षमाका पात्र हूँ।

'चरित्रहीन' संभवतः अगले वर्षके मध्यभागतक समाप्त होगा। यह ठीक बात है कि समाप्त न होने तक साधारण पाठक इस चीज़को किस तरह ग्रहण करेंगे, इसका अन्दाज़ नहीं लगाया जा सकता। अपनी रचनाओंपर आपकी कृपा देखकर सचमुच ही आनन्दित हुआ हूँ। बहुतेरे कृपा करते हैं सही, पर मेरी रचनाएँ नितान्त साधारण किस्मकी हैं। उनमें ऐसी कौन-सी विशेषता है ? पर, इस लक्ष्यको ठीक रखता हूँ कि मनके साथ रचनाका ऐक्य बना रहे और जो सोचता हूँ, वही लिख सकूँ। यह क्या सोचेगा, वह क्या कहेगा, उधर एक प्रकारसे देखता ही नहीं। शायद इसीलिए ही बीच बीचमें लोगोंको अच्छा भी लगता है--कभी नहीं भी लगता है। फिर भी कदाचित् ताच्छिल्य करके वे लेखकोंका अपमान नहीं करना चाहते हैं। आपकी रचनामें विशेषत्व है। मुझे बहुत अच्छी लगती है। बहुत दिन पहिले फणीको लिख भेजा था कि वह आपकी कृपा अधिक प्राप्त करनेकी विशेष चेष्टा करे। यह कहा जा सकता है कि बंगाली भाषापर मेरा बिलकुल अधिकार नहीं है--शब्द-भाण्डार बहुत थोड़ा है। इसीलिए मेरी रचना सरल होती है--मेरे लिए कठिन लिखना ही असंभव है। मेरी मूर्खता ही मेरे कामकी सिद्ध हुई। अच्छा,

भारतवर्षमें 'हरिद्वार' आदिके भ्रमण-वृत्तान्तमें जो 'हेमेन्द्रनाथ राय' का नाम था, वह क्या आप ही हैं? इस प्रश्नका उत्तर दें।

कभी कभी समय मिलनेपर समाचार दिया करें। आपकी चिट्ठी कहाँ रख दी है, ढूँढ़नेपर भी नहीं मिली, यही कारण है कि फणीके पतेपर भेज रहा हूँ। शायद सारी बातोंका जवाब नहीं दे सका। शरीर बहुत कमजोर लग रहा है। आज यहीं तक बस—अगले पत्रमें दूसरी बातें लिखूँगा। मुझे बहुत-सी बातें कहनी हैं।

फणी और 'यमुना'को जरा देखा करें। आप अगर सचमुच ही देखते हैं तो मेरी चिन्ता आधी हो जायगी। यह मेरी आन्तरिक बात है—मन रखनेकी बात नहीं। मन रखनेकी बात कदाचित् ही करता हूँ।—आप लोगोंका अनुग्रहाकांक्षी— श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

५

[श्री हरिदास चट्टोपाध्यायको लिखित]

रंगून, १५-११-१५

प्रियवर, 'श्रीकान्तकी भ्रमण-कहानी' सचमुच ही छापनेके योग्य है, ऐसा मैंने नहीं समझा था—अब भी नहीं समझता। पर सोचा था, कहीं कोई छाप दे। विशेषकर उसके प्रारम्भमें ही जो श्लेष थे वे सब किसी भी दशामें आपकी पत्रिकामें स्थान नहीं पा सकते, यह तो जानी हुई ही बात है। पर दूसरी किसी पत्रिकामें शायद वह आपत्ति न उठे, इसीका भरोसा था। इसीलिये आपकी मार्फत भेजा। अगर कहें तो और लिखूँ। और बहुत-सी बातें कहनेको हैं, पर व्यक्तिगत। श्लेषविद्रूप यहीं तक। आखिर तक सारी बातें सच कही जायँगी।

मेरा नाम किसी भी हालतमें प्रकट न होने पाए।...वह कौन? हाँ, श्रीकान्तकी आत्मकथासे कुछ सम्बन्ध तो रहेगा ही, इसके अलावा वह भ्रमण-कहानी ही है, पर 'मैं' मैं नहीं हूँ। अमुकसे हाथ मिलाया है, अमुकसे सट कर बैठा

हूँ—यह सब नहीं है।......रविबाबूने अपनी आत्मकथा लिखी थी, लेकिन अपनेको किस प्रकार सबसे पीछे रखनेकी सफल चेष्टा की थी! जो लिखना नहीं जानते; अर्थात् जिनकी रचनाओंकी परख नहीं हुई है, वे चाहे जितने बड़े आदमी क्यों न हों, जाने बगैर उनकी लम्बी रचनाएँ छापनेमें निराशाकी सीमा नहीं। ये लोग समझते हैं कि सारी बातें कहनी ही चाहिये। जो कुछ देखते हैं, सुनते हैं, जो कुछ होता है, समझते हैं सब कुछ लोगोंको दिखाना सुनाना चाहिये। जो चित्र बनाना नहीं जानते, वे जिस तरहसे हाथमें तूलिका लेते ही सोचते हैं, कि जो कुछ दिखाई पड़ रहा है सब कुछ चित्रित कर डालें। लेकिन लम्बे अनुभवसे अन्तमें समझ जाते हैं कि बात ऐसी नहीं है। बहुत-सी बड़ी चीजें छोड़ देनी पड़ती हैं, बहुत कुछ बोलनेके लोभका सम्वरण करना पड़ता है, तब चित्र बनता है। बोलने या अंकन करनेसे न बोलना या न अंकन करना अत्यन्त कठिन है। बहुत आत्मसंयम बहुत लोभका दमन करना पड़ता है, तभी सचमुचमें बोलना और अंकन करना होता है।

वाह, यह तो आपको ही लेक्चर देने लगा! माफ करें—यह सब तो मेरी अपेक्षा आप ही खूब अच्छी तरह जानते हैं। जो कुछ भी हो श्रीकान्त पढ़कर लोग किस तरह छी-छी करते हैं, कृपाकर मुझे लिखें। तब तक श्रीकान्तकी एक भी पंक्ति नहीं लिखूँगा।

मैं फिर एक कहानी लिख रहा हूँ। अर्थात् समाप्त करनेके इरादेसे लिख रहा हूँ। अच्छी ही होगी। comedy होगी, tragedy नहीं। देखूँ कितनी जल्दी समाप्त होती है।

इस कहानीका भाव गोराके परेसबाबूसे लिया गया है। अर्थात् अपने कहनेके लिये 'अनुकरण' है पर पकड़ी नहीं जा सकती। सामाजिक पारिवारिक कहानी है। मेरे मनमें बड़ा उत्साह हुआ कि सुन्दर होगी। पर क्यासे क्या हो जायगा, कहा नहीं जा सकता।

रंगून, ७-१२-१५

प्रियवर,—...आशा है कि नई कहानी ठीक समझपर ही भेज सकूँगा। अगर नहीं भेज सका तो एक छोटी कहानी भेज दूँगा। कारण यह है कि मैं आपको असमाप्त कहानी नहीं भेज सकता और उसे समाप्त करनेकी आशामें छापनेके लिए भी नहीं कह सकता। पर चन्द्रकान्तकी कहानी स्वतंत्र है। अगर अभय दें तो इस सम्बन्धमें एक बात कहूँ। सम्पादक महोदयगण कृपा कर इस कहानीका नितान्त ताच्छिल्य न करें। मुझे आशा है कि कमसे कम जो रचनाएँ प्रकाशित होती हैं और हुई हैं, यह उनसे बहुत नीचे आसन पानेके योग्य नहीं है। अनेक सामाजिक इतिहास इसके भविष्यके गर्भमें प्रच्छन्न है। मेरी बहुतेरी चेष्टा और यत्नकी वस्तु कमसे कम मित्रोंसे तो कुछ कद्र पानेके योग्य होगी ही। हाँ, प्रारंभ खराब है—पर यथार्थमें अच्छी चीजका प्रारंभ खराब होता है ऐसा दिखाई भी तो पड़ता है। यही मेरी कैफियत है। क्या अबकी बार छपेगी? हाथकी लिखावटको छपे अक्षरोंमें देखनेकी आशासे ही उसे भेजा है, यह बात भूमिकामें लिखी हुई है।...

—आपका शरत्

५४।३६ वाँ स्ट्रीट, रंगून
२२. २. १६

बहुत दिनोंसे आपका पत्र नहीं मिला। आशा है सब ठीक है। भाई, मैं इस बार बुरी तरह गिरा हूँ। सुदूरसे प्रमथ भाईकी हवा लगी कि क्या हुआ कुछ समझ नहीं पा रहा हूँ। इस बार हालत और भी खराब है। सुनता हूँ यह बर्माकी बीमारी है। देश नहीं छोड़नेसे यह भी नहीं छोड़ती। इसलिये दोमेंसे एक शायद अनिवार्य हो रहा है। मैं कुछ नहीं जानता, भगवान ही जानते हैं। डर लगता है शायद जिन्दगी भरके लिये पंगु ही हो जाऊँगा।...मानसिक चंचलताके कारण कुछ भी काम करनेकी इच्छा नहीं हुई—जलधर दादाको यह कहकर 'समाज धर्मका मूल्य' पढ़नेको दें। इसकी फेयर कॉपी मात्र तैयार कर सका था। बाकी हिस्सा फेयर कर बादमें भेज रहा हूँ। इसके बाद जो कुछ लिखनेका विचार किया है, वह दूसरे

देशोंके सामाजिक नियमोंसे अपने देशके समाजकी एक तुलनात्मक आलो-चनाके सिवा और कुछ भी नहीं है। इसलिये उधर किसी प्रकार व्यक्तिगत आलोचनाका डर नहीं। नहीं जानता, इस निबन्धको 'भारतवर्ष'में छापनेकी उनकी प्रवृत्ति होगी या नहीं, किन्तु अगर नहीं होती है तो आप वापिस भेज दें। मैं पूरा लिख कर एक पुस्तक तैयार कर रखूँगा और भविष्यमें इसके व्यक्तिगत अंश काटकर छपवानेकी चेष्टा करूँगा। सचमुच ही भाई, इस समाज-तत्त्वको लेकर बहुत दिन बिताए हैं। बहुत-सी बातें लिखनेके लिये दिल तड़फड़ाता है। लेकिन इन बातोंको जरा भद्र भावसे कैसे कहा जाय, यह भी निश्चय नहीं कर पाता।...

जलधर दादाको बहुत आशाएँ बँधाई थीं, लेकिन कहानी लिखना संपूर्ण रूपसे मानसिक स्थिरतापर निर्भर करता है। अगर मेरा भाग्य चिरकालके लिये फूट गया है और इसे ठीक ठीक जान जाऊँ, तो धीरे धीरे इस महा-दुखको शायद सह सकूँगा। हो सकता है, तब इस पंगु होनेको भगवानका आशीर्वाद समझूँगा और स्थिररूपसे ग्रहण भी कर सकूँगा। मेरे इस लकड़ी जैसे शरीरमें इस तरहकी कठिन बीमारी कभी संभव होगी, इसे कभी नहीं सोचा था; और अगर यही होता है तो शायद अन्तमें इसीकी मुझे आवश्य-कता थी। लड़कपनमें ईश्वरको बहुत प्यार किया है। बीचमें शायद संपूर्ण रूपसे भूल गया था। फिर अन्तिम कालमें अगर वही दर्शन देने आते हैं तो अच्छा ही है।...

[मार्च १९१६]

आपका पत्र मिला। लेकिन आजकल हफ्तेमें केवल एक जहाज जानेके कारण उत्तर देनेमें इतनी देर हुई।

मेरी बीमारीकी बात सुनकर आपने जो कुछ लिखा है, मैं शायद उसे कल्पना करनेकी भी हिम्मत नहीं कर सकता था। हृदयसे आशीर्वाद करता हूँ कि दीर्घजीवी और चिरसुखी हों। भगवान आपको कोई विशेष दुख न दें।

मैं पीड़ित हूँ। यहाँ अच्छा होनेकी आशा नहीं। शरीरके और अंगोंको

ठीक रखकर जगदीश्वर मुझे पंगु होनेकी ही सजा देते हैं, तो वही अच्छा है। बीच-बीचमें सोचता हूँ कि शायद मेरे चलने-फिरनेकी इति हो गई है, इसीलिये वे दोनों पैरोंको बन्द कर केवल हाथोंसे ही काम करनेको कहते हैं। लेकिन इसमें एक दोष यह है कि हजम करनेकी शक्तिका भी नाश होता जाता है। सो इसको किसी स्वास्थ्यके स्थानमें रहकर ठीक कर लेना होगा।

आपने मुझे जो कुछ देना चाहा है वही मेरे लिये यथेष्ट है। इस वर्षके अन्दर मर नहीं जाता, तो हो सकता है कि रुपये पैसेका कर्ज अदा हो जाय। पर कृतज्ञताका ऋण तो अदा नहीं हो सकता।...मैं एक सालकी छुट्टी लेकर आऊँगा। जिस जहाजका टिकट मिल सकेगा उसीसे चले आनेकी आन्तरिक इच्छा है।...आप मुझे तीन सौ रुपये भेजें, तो मजेमें आ सकूँगा।...

इस मनहूस स्थानको छोड़ देनेके बाद आपकी यह सारी अतिरिक्त आर्थिक क्षति अगर कुछ कम कर सकूँ तो इस एक सालमें इसीकी चेष्टा करूँगा।

मैं कुछ अच्छा हूँ। सूजन कुछ कम है। कविराजी तेल मालिश करके देख रहा हूँ, यह अच्छा है या बुरा। अभी पूर्णिमा तक मालूम हो जाएगा। मेरे करोड़ों आशीर्वाद लें। इस प्रकारका आशीर्वाद शायद आपको बहुत कम लोगोंने दिया है। छुट्टीमें दफ्तरसे क्या मिलेगा, नहीं जानता। यहाँके सारे नियम कानून बड़े साहबकी मर्जीपर हैं, जो कुछ भी मिल जाय। आप मुझे जो कुछ भी देंगे, वही मेरे लिये यथार्थमें यथेष्ट होगा।

[मार्च १९१६ ?]

...कल आपके दिये तीन सौ रुपये मिले। ११ अप्रैलके पहले किसी भी हालतमें टिकट नहीं मिल रहा है।

२६६, शिवालय, बनारस सिटी।
७. ४. २०

परम कल्याणीय, आपका पत्र मिला। यहाँ बहुत गर्मी पड़ रही है। ऐसा हो गया है कि क्षणभरके लिये जी नहीं लगता। काल भैरवने पोस नहीं

माना। चैत्रका महीना है, जाया नहीं जा सकता है। उन्हें एक व्रत पालन करना है।

कैसी बुरी जगह है कि एक भी पंक्ति नहीं लिखी जाती। पिछले चार पाँच दिनोंसे लगातार कलम लेकर बैठता हूँ और दो घण्टे चुप बैठकर उठ जाता हूँ। ऐसा लगता है कि अब कभी लिख ही नहीं सकूँगा। जो कुछ था अब शायद समाप्त ही हो गया है, कौन जाने! एक बड़ी मजेदार बात है। यहाँ भृगु-संहिताके एक नामी पण्डित हैं। वह मेरी जन्म-कुण्डली विचार कर हैरान रहे और मैं भी हैरान रह गया! मेरे अतीत-जीवनको (जिसे आज भी कोई नहीं जानता) अक्षरशः इस तरह बतलाने लगे कि लज्जासे सिर नीचा हो गया! और भविष्यका जीवन तो और भी भीषण! वे बारम्बार कहने लगे कि यह किसी महायोगी और नहीं तो राजतुल्य किसी व्यक्तिकी कुण्डली है! हाँ, मैंने अपना परिचय गुप्त ही रखा था। इस आदमीकी बड़ी ख्याति है, आमदनी भी काफी है। बाकी लोग बैठे रहे, और पण्डितजी मेरी कुण्डली देखने लगे। पारिश्रमिक तो लिया ही नहीं, बारम्बार पूछने लगे कि ये कौन हैं और कहाँ रहते हैं। धर्मस्थानमें बृहस्पतिका इतना पूर्ण संस्थान कहते हैं उन्होंने पहले कभी नहीं देखा था। अच्छा भाई, अगर यह सच है तो मेरे जैसे नास्तिकके भाग्यमें यह कैसी विडम्बना है, यह कैसा परिहास है, बताइये तो? आयु किन्तु ४८ या अधिकसे अधिक ५६। उन्होंने सम्भ्रमके अतिरेकमें मृत्यु नहीं बताई, उच्चारण ही नहीं कर सके। कहने लगे कि इनका अगर ४८ में मोक्ष नहीं होता है तो उसके बाद संसार त्याग करके ५६ में शरीर त्याग करेंगे!!! पर बड़ी बात यह है कि यह सच नहीं होगा, इसे मैं भली भाँति जानता हूँ। लेकिन अतीतको इस तरह अक्षरशः सत्य कैसे बता सके, मैं तभीसे लगातार इस बातको सोच रहा हूँ। क्या जानूँ, सोचते सोचते बुढ़ापेमें फिर न कहीं उन ऊँटोंमें जा मिलूँ। —शरत्‌दा

•

अबसे मेरा आप लोग 'सम्मान' करके चलें। अवश्य ही ऐसा 'कोई' नहीं हूँ कि शाप देकर भस्म कर दूँ। यहाँ एक और नामी गणक हैं—सुधीर भादुड़ी। उन्होंने गिनकर बतलाया कि मैं एक जबर्दस्त धार्मिक आदमी हूँ!

इस सत्यका आविष्कार उन्होंने भी किया। देखता हूँ मुझे ले जाकर उसी दलमें भिड़ा रहे हैं!—('खेया' भाद्र-आश्विन १३५२)

सामताबेड़, पानित्रास, हावड़ा
७ आषाढ़, १३४०

कल्याणीय,...गत बुधवारको मुझे ज्वर आया। आज आठ दिनोंके बाद भी ज्वर नहीं उतरा,...आपने दत्ताके अभिनयका अधिकार माँगा था। अतएव मैं सहर्ष ही देनेके लिये राजी हुआ था। लेकिन भाग्यमें विधिकी विडम्बना आई, नहीं तो 'विजया' नाटकको अब तक समाप्त कर डालता।

आप उसे दूसरेसे लिखाना चाहते हैं। लेकिन क्या वह मुझसे जल्दी कर सकेगा? उसके लिए देखता हूँ अनेक असुविधाएँ हैं। बीचमें लेखकके स्वयं न रहनेसे वे सब स्थान पूर्ण कर देना कठिन ही समझता हूँ और अभिनयकी दृष्टिसे भी वह बहुत अच्छा होगा इसकी भी आशा नहीं रखता। मेरा अपना लिखा होनेसे यह बाधा नहीं रहती; और मैं भी एक नाटक 'विजया' नामसे प्रकाशित कर सकूँगा; दूसरेका लिखा होनेसे तो नहीं कर सकूँगा। सिनेमाके मामलेमें तो मेरी कोई गरज ही नहीं है।

प्रथम अंक प्रबोध गुह देखने ले गये, सो दिया ही नहीं। कापी जो थी उसे अभिनयोपयोगी करके लिखना आरंभ किया था कि इसी समय विघ्न आ पड़ा।

पर आप लोगोंको विलम्ब होनेसे—(अर्थात् 'विजया'की आशामें)—बहुत क्षति होगी। व्यर्थ ही अभिनेताओंको वेतन देना पड़ रहा है। इस हालतमें क्या करूँ, समझमें नहीं आता है। पर एक तरहसे पूरी पुस्तक तैयार है। केवल थोड़ा बहुत रद्दोबदल और थोड़ा-सा लिख कर कापी करवाना है। अगर इस बीच मैं अच्छा हो गया तो अवश्य ही कर डालूँगा। कुछ दिन पहले अगर आपने यह फैसला किया होता तो कोई बात ही नहीं थी।...

पुनश्च। देखनेके लिये पहले हिस्सेको तुलुके हाथ भेज रहा हूँ। इसे देखकर अगर समझें कि बाकी हिस्सेको आप लिखा सकेंगे तो मुझे जताना।—

६

[मणिलाल गंगोपाध्यायको लिखित]

रंगून, ७-१-१४

प्रिय मणिबाबू, बहुत दिन हो गए आपकी चिट्ठीका जवाब नहीं दिया है। इस त्रुटिके लिए खुद ही लज्जित हूँ, इसपर आप और कुछ न सोचें।

अपनी रचनाकी आलोचना सुनकर आप दुःखित नहीं हुए हैं, इस बातको आपकी जबानी सुनकर चैनकी साँस ली। कभी कभी सोचा करता था कि मेरा तो यही पाण्डित्य है कि दूसरोंके दोषोंको दिखाऊँ। लेकिन उन्होंने क्या सोचा होगा। छोड़िए इन बातोंको—बहुत सुखी हुआ हूँ।

इसके बाद भी मैंने आपकी पुस्तक फिर एक बार शुरूसे आखिरतक पढ़ी थी, सचमुच ही बहुत अच्छी लगी है—इस बार मानो कुछ अधिक समझ सका हूँ कि यह रचना क्यों दूसरोंको मेरी तरह अच्छी नहीं लगती है। यथार्थ ही आपकी रचनाका tone कवि जैसा है। निराकार (abstract) भावकी कविता जिन्हें अच्छी नहीं लगती है, उन्हींको आपकी रचना अच्छी नहीं लगती है, इस बातको निश्चित रूपसे कह सकता हूँ।

जिन कविताओं या छोटी कहानियोंमें अनेक तथ्य हैं, घटनायें हैं, भाव बिलकुल सीधेसादे सांसरिक हैं, मैंने देखा है अधिकतर लोगोंको वही अच्छी लगती हैं; क्योंकि उन्हें वे अच्छी तरह समझते हैं, उन्हें समझना भी आसान है। यहा और एक बात कहूँ। बहुत दिन पहले वसुमती पत्रिकाने आपकी 'बिन्दु'की आलोचना करते हुए लिखा था—" हिन्दू विधवाका रातमें औरके घर जाना क्या रुचि, इत्यादि इत्यादि। " (मेरे एक मित्रने इस आलोचनाकी बात मुझे सूचित की—मैंने खुद उसकी शब्दावली नहीं देखी है।) इस बातको जानकर एक बार मुझे ऐसा लगा कि इस आदमीकी हिमाकतकी तरह मैं भी एक घोर प्रतिवाद किसी पत्रिकामें छपवा दूँ—मुझे लगा कि कहूँ और काफी कड़े शब्दोंमें कहूँ—" लेखककी रुचि बहुत अच्छी है, सिर्फ तुम ही अनुदार और बेवकूफ हो, इसीलिए तुम्हें इसमें दोष दिखाई पड़ा। " बिन्दुने

कौन-सा अपराध किया, यह मेरी समझमें किसी भी तरह नहीं आया। वह बेचारी एक और निरुपाय अभागे साथीको रातमें छिपकर देखने गई थी, अगर ज़रूरत हुई तो मुँहमें एक बूँद पानी देने या इसी तरहका कोई काम करनेके लिए—बस यही न। इतनेहीसे महाभारत अशुद्ध हो गया। हो सकता है कि मन ही मन कुछ स्नेह भी करती हो—क्योंकि वह उसका खेलका साथी था। क्या यह दोषकी या रुचिविरुद्ध बात है? कारण वह विधवा है—अर्थात्, हिन्दू विधवाके सामने अगर कोई मर जाता है, और अगर उसकी उँगलीसे छूनेसे भी वह जिन्दा हो सकता है, तो हिन्दू विधवाको यह भी नहीं करना चाहिए। क्यों कि वह विधवा है और जो आदमी मर रहा है वह पर पुरुष है! यही इनकी हिन्दू विधवाका आदर्श है!

लगता है कि लोग इतना संकीर्ण मन लेकर दूसरोंका दोष दिखानेकी हिमाकत करते हैं और दिखाते हैं, और लोग उस आलोचनाको पढ़कर कहते हैं "बात तो ठीक है! ठीक ही तो लिखा है!"

मैं ठीक ठीक यह नहीं बतला सकता कि आलोचना कैसी थी। अपने मित्रसे जैसा सुना वैसा ही लिखा है। आपने शायद वह आलोचना देखी होगी।

कुछ पाठक यह भी समझते हैं कि जहाँ तहाँ जप-तप, संन्यासी और हिन्दू धर्मकी बड़ी बड़ी बातोंके न होनेसे कहानी या उपन्यास किसी भी दशामें अच्छा नहीं हो सकता।

यदि आप लिख दें कि किसी विधवाका ब्याह हुआ—तो फिर आप जायँगे कहाँ—मारो मारो कहकर सब दौड़ पड़ेंगे। और ये लोग बिलकुल फूहड़ गालियाँ देनेमें विशेष पटु होते हैं, यही इनका बल है—अर्थात् ये चीत्कार करके और शारीरिक बलसे जीतनेकी चेष्टा करते हैं और जीत भी जाते हैं।

दिन-ब-दिन हमारा साहित्य मानों बिलकुल एक ही साँचेमें ढला-सा होता जा रहा है—प्रतिदिन संकीर्णसे संकीर्णतर हो रहा है, (इसीलिए कभी कभी मुझे लगता है कि उच्छृंखल रचनाएँ शुरू कर दूँ—केवल गुस्सेमें आकर जैसा-तैसा लिखने लगूँ!) मैंने कुछ दिन पहिले अपनी दीदीके नामसे 'नारीका मूल्य'

शीर्षक एक निबन्ध लिखा। दीदीने, चिट्ठीमें मुझे लिख भेजा और उसीको मैंने बढ़ाकर लिख दिया। इसके लिए सम्बन्धियों, और मित्रोंने मुझपर कितना क्रोध प्रकट किया यह नहीं कहा जा सकता। किसी किसीने ऐसा भी कहा कि मैं म्लेच्छभावापन्न हूँ—ठीक ठीक हिन्दू नहीं हूँ। हिन्दू धर्मपर मैंने कभी भी कटाक्ष नहीं किया, केवल इसकी अनुदारतापर आक्रमण किया है। कितने ही लोगोंने आलोचना (भयानक प्रतिवाद) करनेका डर दिखाया, पर आज तक किसीने कुछ भी नहीं किया। उसी समय मेरे एक मामाने लिखा कि मैं दिलसे तो ब्राह्म हूँ और बाहरसे हिन्दू। यद्यपि मेरे गलेमें तुलसीकी माला है, संध्या किए बगैर मैं जल ग्रहण नहीं करता, जिसके तिसके हाथसे पानी तक नहीं पीता। (बुरा न मानें मणि बाबू, आपसे ये बातें कहना अन्याय है।) मैं जो कुछ हूँ वही आपको लिखा। इन सब बातोंके होते हुए भी उन्होंने मुझे कितनी गालियाँ दीं और मैं बाहरसे ढोंग रचता हूँ, यह कहकर धमकाया, इसे कहाँ तक लिखूँ। इसके बाद ही बीमार हो गया, नहीं तो इच्छा थी कि इसी तरहके 'देवताओंका मूल्य' और 'हिन्दू-शास्त्रोंका मूल्य' शीर्षक निबन्ध लिखना शुरू करूँगा। छोड़िए, अपनी ही बातोंसे चिट्ठी भर दी—कैसे हैं? तबियत ठीक हुई क्या? नया कुछ लिखा? हाँ, अच्छी बात है, जो कुछ भी लिखें अंतमें अधीर (imapatient) होकर समाप्त न करें। शायद यहीं आप गलती करते हैं।—

आपका, श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

एक अनुरोध, इस चिट्ठीमें जो कुछ भी क्यों न लिखा हो बुरा न मानें—अगर कोई गैर वाजिब बात भी लिखी हो तो भी।

पुनश्च—आपकी भाषाकी एकाध छोटी-मोटी त्रुटियोंको लेकर लोगोंको शोर गुल मचाते देखता हूँ। हाँ, मैं खुद आपकी (उन त्रुटियोंकी) तरह नहीं लिखता। लेकिन दोष भी नहीं देखता। आप जान बूझकर ही वैसी भाषा और हिज्जे लिख रहे हैं—अच्छा ही कर रहे हैं। जिस बातको अच्छा समझा है उसे केवल दूसरोंके कहनेसे न छोड़ें। पर अगर खुद देखते हैं कि उन्हें बदलना आवश्यक है, तो बदलें।

७

[श्री सुधीरचन्द्र सरकारको लिखित]

प्रिय सुधीर,—कल रातमें तुम्हारा पत्र मिला। जो विलम्ब हो रहा है और इससे जो क्षिति हो रही है, उसे क्या मैं नहीं जानता ? पर प्रायः अधिकांश नये सिरेसे लिखना पड़ रहा है। अगर दो एक महिने देर होती है, तो वह बल्कि अच्छा है, पर इस तरहसे शुरू होकर भद्दे ढंगसे शेष हो, इसीका मुझे डर है।

पर अब छपना बन्द नहीं होगा। अगली डाकसे इतना भेज दूँगा जो शायद अधिक होगा। एक बात और। फिरसे लिखनेमें बहुधा डर लगता है। कहीं पहले जो एक बार कहा है उसे फिर न कह सकूँ। जितना छपा है उसकी बहुत-सी कापियाँ मुझे नहीं मिली हैं। जितना छपा है उसे अगर रजिष्ट्री करके भेज दें तो मेरा चौथाई परिश्रम कम हो जाए। अवश्य ही शुरूसे भेज दें। जल्दबाजी करनेसे तो सब कुछ पन्द्रह दिनमें हो सकता है। लेकिन ऐसा करना क्या अच्छा होगा ? पर और जितना भी विलम्ब हो माघ महिनेके अन्त-तक अधिकांश छपाई समाप्त हो ही जाएगी। मेरे हाथोंकी हालत ठीक वैसी ही है। शायद अब अच्छे नहीं होंगे। फाल्गुनमें आनेकी इच्छा है। मेरा स्नेहाशीर्वाद लें। इति—(आनन्दबाजार पत्रिका, ८ माघ, १३४४)।

[१४ मार्च १८१६]

...शायद सुना होगा मैं प्रायः पंगु हो गया। कहा जा सकता है चल फिर नहीं पाता, पर लिखने पढ़नेका काम पहले जैसा ही कर सकता हूँ। लेकिन मन इतना विमर्ष है कि किसी काममें हाथ लगानेकी इच्छा नहीं होती—लगानेपर भी वह अच्छा नहीं होता। केवल जो पहले लिखे हुए थे—अर्थात् आधा तिहाई चौथाई, इस तरहकी मेरी बहुत-सी रचनाएँ हैं—उन्हींको किसी तरह जोड़ तोड़कर खड़ा कर देता हूँ। 'चरित्रहीन' के बारेमें ऐसा नहीं करना

चाहा, इसीलिये इतने दिनोंतक दो दो अध्याय भेज रहा था। नहीं हो तो अब तुम मेरे पास बैठकर ठीक कर लेना। मैं आयुर्वेदिक चिकित्साके लिये कलकत्ता आ रहा हूँ—एक वर्ष रहूँगा। ११ अप्रैलको रवाना होऊँगा, क्योंकि इसके पहले किसी तरह टिकट नहीं मिल सका। आजकल सप्ताहमें एक, कभी कभी डेढ़ सप्ताहमें एक जहाज छूटता है।...अच्छी बात है। आनेकी इच्छा होती है तो आना, लेकिन क्या टिकट मिलेगा? (आनन्दबाजार पत्रिका, ८ माघ, १३४४)

५४।३६ वाँ स्ट्रीट, रंगून
१०–३–१६

परम कल्याणीय। मैं वृद्ध हूँ इसलिये आपको आशीर्वाद देता हूँ। मुझसे परिचय न होनेपर भी आपने मुझे पत्र लिखा इसे परम सौभाग्य न समझकर धृष्टता समझूँगा, मैं इतने ऊँचे मनका नहीं।

पर आपकी चिट्ठीका जवाब देनेमें विलम्ब हुआ हूँ। इसका पहला कारण है आज-कल दस बारह दिनके पहले डाक नहीं जाती। दूसरा कारण है मैं बहुत पीड़ित हूँ।

हाँ, मेरी इस उम्रमें अब रोग-व्याधिकी शिकायत शोभा नहीं देती, फिर भी प्राणोंकी माया तो दूर होना नहीं चाहती। इसीलिये बीच-बीचमें लगता है और कुछ दिनोंतक अपेक्षा करके चालीसके उसपार यह सब कुछ होता तो सभी तरहसे अच्छा होता। अपना मन भी असन्तुष्ट नहीं होता। लेकिन जाने दीजिये इस बातको।

'ग्रामीण समाज' आपको बुरा नहीं लगा, बल्कि अच्छा ही लगा, सुनकर खुशी हुई। मेरा बचपन और जवानीका काफी हिस्सा गाँवमें ही बीता है। गाँवको ही अधिक प्यार करता हूँ। इसीलिये दूरसे जो दो-चार बातें याद आई हैं उन्हें लिखा है। बुढ़ापेमें स्मरण शक्ति और नहीं है, फिर भी जो कुछ शेष है, वह मेरी बहादुरी नहीं तो क्या है! यदि गाँवके लोग अपने मनसे मिलाकर सच बातोंको ही कहनेकी चेष्टा करते हैं, तो वे बातें अक्सर

एक तरहसे कामकी होती हैं। कमसे कम भूल चूक उतनी नहीं होती है, जितनी कलकत्ता या और शहरोंके बड़े लोगोंके कल्पनासे कहनेसे होती है।

इसके बाद प्रतिकारका उपाय आता है। उपाय क्या है, इसका परामर्श देनेकी क्षमता क्या मुझमें है? वह बड़ी शक्ति और बड़ी अभिज्ञताका काम है। अपने मुँहसे उन बातोंको निकालनेकी चेष्टा क्या बहुत कुछ धृष्टता नहीं है?

फिर भी मनकी तरंगमें बीच बीचमें कह भी तो दिया है! जैसे, प्रतिकार है केवल ज्ञानके विस्तारमें। और जो प्रतिकार करना चाहते हैं उन्हें मनुष्य बनना होगा गाँव छोड़कर दूर विदेशोंमें जाकर। लेकिन काम करना होगा गाँवोंमें बैठ कर और गाँवोंके अच्छे बुरे लोगोंसे भली भाँति मेल करके। यह बहुत जरूरी चीज है। इस तरहकी दो-चार बातें।

विश्वेश्वरीकी बातें शायद आपकी दृष्टि उतनी आकर्षित नहीं कर पाईं। अगर आपके लिये धीरज धरना सम्भव हो तो एक बार उसकी बातोंपर नजर डाल लेनेसे जो पहली बार नजरमें नहीं आई दूसरी बार शायद आ सकती हैं। पर यह बात भी सच है कि निगाहमें पड़ने पर भी उन सब बातोंका ऐसा कुछ वास्तविक मूल्य नहीं है, जिसके लिये एक बार फिर पढ़कर समय नष्ट किया जा सके। वह आपकी इच्छापर है।

एक एक करके प्रायः सारी बातें हुईं, रह गई केवल शिष्यत्वकी बात।

गुरु होनेकी काफी शक्ति थी तब, जब मेरी उम्र १८ पार नहीं हुई थी। तब जिनकी गुरुआईकी थी अब वे मुझे पारकर इतनी ऊँचाईपर पहुँच गए हैं कि अगर उनका नाम लूँ तो आपके अचरजका पारावार नहीं रहे। मैंने एक समय उनकी भी रचनाएँ पढ़कर काट-छाँट की थी, भली बुरी राय दी थी और पथप्रदर्शन भी किया था।

उसके बाद जितनी अभिज्ञता संचय की है इस गुरुआईकी क्षमताको उतना ही खोया भी है। अब आजकल वह बिल्कुल नहीं है। मैं आप लोगोंको सिखाऊँगा, यह बात अब कल्पनामें भी नहीं आती।

यह पत्र जिस समय आपके हाथोंमें पहुँचेगा, संभवतः उसी समय मैं भी आयोजन करके रंगून छोड़ जहाजपर चढ़ूँगा। यह देश छोड़नेसे तबीयत कुछ ठीक हो, इसी आशासे। एक बार फिर वृद्धका आशीर्वाद लें।

[प्रवाह, आश्विन, १३४५]

८

[श्रीमुरलीधर वसुको लिखित]

५४, ३६ स्ट्रीट, रंगून
७-४-१९१६

परम कल्याणीय,

बहुत दिनोंके बाद आपके पत्रका जवाब देने बैठा हूँ। विलम्ब इतना अधिक हो गया है कि आपने इसकी आशा बहुत दिन पहिले ही छोड़ दी होगी।

मैं बहुत आलसी आदमी हूँ। मेरे लिए इस प्रकारका अपराध प्राय स्वाभाविक बन गया है। पर इस क्षेत्रमें एक कैफियत यह है कि बहुत बीमार पड़ गया था। बीमारी इतनी अधिक थी कि यहाँ अब नहीं रहा जा सका— हवा बदलनेके लिए अन्यत्र जाना पड़ रहा है। यह पत्र जब आपके हाथोंमें पहुँचेगा तब मैं इस पतेपर नहीं रहूँगा। अगर कृपा कर कभी इस पत्रका उत्तर दें तो जिस तरह मौजूदा पतेसे अवगत हुए थे उसी तरह जान सकेंगे। यद्यपि समझ रहा हूँ कि इसकी आवश्यकता शायद अब आपको नहीं होगी।

लेकिन इस बातको रहने दूँ। मेरी रचना आपको अच्छी लगी है, यही मेरे परिश्रमका पुरस्कार है। आपने इस बातको सूचित कर मुझे सुखी किया है, इस लिए हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। आशीर्वाद देता हूँ आप भी इसी तरह सुखी हों।

भगवानसे आपकी कुशलताके लिए प्रार्थना करता हूँ।

आशीर्वादक—श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

१

[प्रमथ चौधरीको लिखित]

६ नीलकमल कुंडू लेन, बाजे-शिवपुर
१६ । ६ । १६

सविनय निवेदन। किसी भी कारणसे आपकी चिट्ठी मिल सकती है, इसकी आशा मैंने कभी नहीं की थी। आज मंटूकी भी एक चिट्ठी मिली।

करीब पाँच महीने हो चले मैं इस देशमें आया हूँ। आनेके ही बादसे आपसे मिलनेकी चेष्टा की है, लेकिन मिलना अब तक सम्भव नहीं हुआ। किस रास्ते जानेसे आपके घर पहुँच जा सकता है, यह नहीं जानता। इसके अलावा संकोच भी था—कहीं बेमौके पहुँचकर आपका समय न नष्ट करूँ। अब जब आपने खुद ही बुलाया है तो अवश्य ही आऊँगा। देखूँ, कल बुधवारको अगर आपके दफ्तरमें हाजिर हो सकूँ। नहीं तो शनिवारको आपके बालीगंजवाले मकानपर जाऊँगा। मेरी मुलाकातका एक विशेष कारण यह है कि आपकी रचनाओंका मैं भी एक भक्त हूँ। कमसे कम अधिक पक्षपाती हूँ। इसीलिये जब बाहरके लोग आपकी निन्दा करते हैं तो मुझे भी खलता है। दोनों पक्षोंकी रचनाओंको मैं ध्यानसे पढ़ता हूँ। मेरे लिये कठिनाई यह है कि उनके क्रोधके कारण नहीं समझ पाता, और आप भी क्या समझाते हैं, यह भी मेरी समझमें नहीं आता। यह सब बहस अवश्य ही उच्च कोटिकी होती है, इसमें मुझे संदेह नहीं। पर जिस रूपमें वह प्रकाशित होती है उसे नहीं समझ पाता। मेरी अक्ल मोटी है, इसीलिये किसी भी बातको मैं ठोस रूपमें ही समझना चाहता हूँ। आपसे मिलनेका कारण यही है। सोचा है साक्षात्कार करनेपर सारी चीजोंको विशेष रूपसे समझ लूँगा। श्रीयुत यादेवेश्वर पंडित महाशयसे एक दिन यही प्रश्न किया था। उन्होंने समझा भी दिया था। अपने मणिलालसे भी पूछा था। उन्होंने भी समझा दिया था। अब आपकी बारी है।

श्रीयुत् क्षीरोदबाबू (नाट्यकार) ने एक दिन मुझसे कहा था कि मैं

बंगला साहित्यका एक रत्न हूँ। इसका कारण यह है कि मैं जिस भाषामें लिखता हूँ वही ठीक है। लेकिन 'सबुज पत्र' में उन्होंने भाषाकी मिट्टी पलीद कर दी है। उनकी भाषा भाषा ही नहीं है।

मैं स्वयं इस बातका आविष्कार नहीं कर सका कि मेरी भाषा और 'सबुज पत्र'की भाषामें पार्थक्य कहाँ है। इसीको आपसे अच्छी तरह समझ लूँगा। मेरी कोई रचना आपने पढ़ी है या नहीं, पता नहीं। यदि पढ़ी है तो कोई असुविधा नहीं होगी।

पंडित महाशयने उस दिन कहा था कि बंगला भाषा संस्कृतनिष्ठ होनी चाहिये, और इसीको लेकर झगड़ा है। संस्कृतके प्रति निष्ठा कहाँ तक होनी चाहिये, इसे वे स्वयं नहीं जानते और आप लोग भी नहीं जानते। देखूँ, इसका फैसला आपके पास जाकर होता है या नहीं।—श्री शरत्चंद्र चट्टोपाध्याय

६, नीलकमल कुंडू लेन,
बाजे-शिवपुर, २१-६-५२

सविनय निवेदन,

कल आपने मुझे एक पुस्तक दी थी। पुस्तकका पढ़ना मेरे लिये एक आदत बन गई है और इससे अब वह एक बुरी आदतपर जा पहुँची है। उस पुस्तकको पढ़ूँ या न पढ़ूँ, पर प्राप्ति-स्वीकार करना एक भद्रता है, यह भी मानों याद नहीं रहता। इस बातमें दम्भकी ध्वनि निकलने पर भी यह सत्य है। इसीलिये आपकी पुस्तकने जब बहुत दिनोंके बाद प्राप्ति स्वीकारकी याद दिला दी तो आपको धन्यवाद दिये बिना नहीं रहा जा सका। एक बार इसके लिए भी धन्यवाद और दूसरी बार धन्यवाद पत्रके अन्तमें दूँगा।

कल ही रातको पुस्तक समाप्त की। कहना नहीं होगा कि कहानियाँ पढ़नेमें बहुत दिनोंसे ऐसा आनन्द नहीं मिला था। इसकी विशेष प्रशंसा करनेका अर्थ है इसकी समालोचना करना। इसे करनेके लिये बहुतेरे आपको दिन-रात धमकियाँ दिया करते हैं, इसका संकेत भी कल आपके घरमें सुन आया। अतएव यह काम मैं नहीं करूँगा। और वे लोग भी क्या करेंगे,—शिव बनायेंगे या बन्दर—वही जानते हैं। उन्हें अच्छी लगती है—यह एक बात

है। लेकिन इस रचनामें कितनी प्रौढ़ता है, कितनी सूक्ष्म कारीगरी है, इसका निजी सौन्दर्य कहाँ है, मधुर काव्य-रस कहाँ है, सबसे अधिक इसे लिख सकना कितना कठिन है, यह वे ही लोग समझेंगे जिन्हें अपने हाथोंसे लिखनेका रोग है। और कहना नहीं होगा कि इस प्रकारकी कुशल रचनाको पढ़नेका रोग देशके कुछ लोगोंमें है। पर इसे छोड़िये। वास्तविक बात यह है कि रवि बाबूकी रचना पढ़नेपर मुझे ऐसा लगा था कि चेष्टा करनेपर भी मैं ऐसा नहीं लिख सकता। और कल आपकी कहानियोंकी पुस्तक पढ़नेपर भी मुझे लगा कि चेष्टा करने पर भी मैं ऐसी रचना नहीं कर सकता। इसी बातको सूचित करनेके लिये यह पत्र लिख रहा हूँ।

कल शामको अर्थात् आपके यहाँसे निकल कर 'भारतवर्ष' कार्यालयमें आया और वहीं 'सोमनाथकी कहानी' समाप्त करनेपर जलधरबाबू आदि कई व्यक्तियोंसे उसको लेकर बहस चल पड़ी। मैंने अपना मत दिया कि यह रचना उन्हें अवश्य पढ़नी चाहिये, जो अधिकांशमें स्वयं पुस्तक लिखते हैं। इसकी निर्मल रचनाशैली, सहज-सरल कथोपकथन, रसका ऐसा परिपाक, मनोभावोंकी अभिव्यक्तिका ऐसा अनाविल मुक्त-पथ, वे लोग जितना समझ और सीख सकेंगे, जो लेखक हैं, उतना साधारण लोग नहीं। साधारण लोगोंको तो केवल अच्छी ही लगेगी; पर ग्रन्थकारोंको तो अच्छी भी लगेगी और उपयोगी भी होगी।

यहाँ आपसे एक अनुरोध करूँगा कि कृपया आप यह न सोचें कि इस उच्छ्व-सित प्रशंसामें रंच मात्र भी अत्युक्ति है—दूसरे लोग जिसे खुशामद कहते हैं। क्यों कि मैं जानता हूँ कि इसी बीच जितने लोगोंकी जितनी प्रशंसा आपको 'चारयारी'के उपलक्ष्यमें मिली है, उसमें उपर्युक्त खुशामद भी है, यह आपने स्वयं अनुभव किया होगा। कमसे कम मैं होता तो यही अनुभव करता। क्यों कि मैं इस बातको निश्चित रूपसे समझता हूँ कि यह पुस्तक साधारण पाठकोंके लिये नहीं है। साधारण लोग इसे समझेंगे ही नहीं। *

* उस दिन इस पुस्तकके प्रसंगमें एक पंडितने कहा था कि आप रवि बाबूकी सारा कविताओंका अर्थ समझा दे सकते हैं?

मैंने कहा कि नहीं, नहीं समझा सकता। इसका कारण यह है कि आप वेदान्तके बड़े पंडित होने पर भी काव्य समझनेमें पण्डित नहीं हैं। इसके अलावा सभी कविताओंके अर्थ सभीको समझना ही चाहिये, इस तरहकी कोई शपथ नहीं दिलाई गई। रवि बाबूकी 'श्रेष्ठ भिक्षा'को पढ़कर गुरुदास बाबूने कहा था कि ऐसी अश्लील कविता उन्होंने पहले कभी नहीं देखी। अतएव यह बात सर गुरुदासके मुँहसे निकली है, इसीलिये मान लेना होगा और न माननेसे भीषण अपराध होगा, ऐसा नहीं है। —शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय २।१०।१६

अँग्रेजीमें एक बात है 'आर्ट टु हाइड आर्ट' अर्थात् कला छिपानेके लिए कला। इसे न समझ पानेके कारण वे मान बैठते हैं कि इस मँजे हुए सौन्दर्यमें सौन्दर्य ही नहीं है। मारवाड़ी लोग मकान बनवाते हैं और पैसा खर्च करके उसमें कारुकार्य करवा लेते हैं।

पाठकोंकी बुद्धि और संस्कृति (Intelligence and Culture) जबतक एक सीमातक नहीं पहुँच जाती है, तबतक वे इस पुस्तकको समझ ही नहीं पाते। इस बातको मैं बनाकर नहीं कह रहा हूँ। अगर फिर कभी मुलाकात हुई, तो इसपर बातें होंगी। आपको हजारों धन्यवाद देकर आज बिदा होता हूँ। ऐसा भी हो सकता है कि मुझे अच्छी लगनेकी आपके निकट कुछ भी कीमत नहीं हो। —श्री शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय

२–१०–१६

शिवपुर

आज अभी अभी आपका पत्र मिला। उससे आपको जो पत्र लिखा था—परन्तु भेजा नहीं था—पीछे अचानक आप कुछ समझ बैठें इसलिये आज भेज दिया है। किसी दिन कोठीपर आऊँगा।

---

६ नीलकमल कुंडू लेन,
बाजे-शिवपुर, हावड़ा
११–१०–१९१६

सविनय निवेदन। कई दिन हुए आपका पत्र पाकर जवाब देनेमें विलम्बके कारण लज्जित हूँ। जाना भी नहीं हो सका, इसके लिये अपने ही मनमें क्लेशका अनुभव कर रहा हूँ। परसों अर्थात् बृहस्पतिवारको अगर आप घरपर रहें तो शामको आऊँगा। लेकिन न जाने क्यों मेरा स्वभाव है कि बड़े आदमीके घर जानेकी बात याद आते ही चित्त द्विधासे संकोचसे खिन्न हो जाता है। इसीलिये जाते जाते भी जाना नहीं होता है।

इस संकोचसे ऊपर उठ सका तो परसों निश्चय ही आपके यहाँ हाजिर होऊँगा। और अगर नहीं हो सका, तो कारण आपको बतलाना नहीं पड़ेगा। लेकिन जाने दीजिये इस बातको।

आपकी इस पुस्तककी जिन्होंने आलोचना लिखी थी, वे अति उच्छ्वासके दोषके कारण ही पत्रिकावालोंको प्रसन्न नहीं कर सके, शायद बात ऐसी नहीं। आपको तो मालूम है कि हमारी पत्रिकाओंमें 'नामका भार' न रहे तो कोई सम्पादक धारकी (बुद्धिकी तीक्ष्णताकी) जाँच नहीं करेगा। मेरी आलोचना, अवश्य ही अच्छी नहीं होगी, क्योंकि इस विषयमें मेरी शक्ति बहुत कम है। पर नीचे नाम लिख देनेसे किसी भी पत्रिकामें उसे स्थान मिल जायगा। इसीलिये अगले महीनेमें आलोचना करूँ या न करूँ, सोच रहा हूँ। या तो 'भारतवर्ष' में नहीं तो 'प्रवासी' में। पर अक्षमकी तूलिकासे चीजका चेहरा कहीं आजकलके भारतीय आर्टके उत्कृष्ट नमूने जैसा न लगे, इसीका मुझे डर है। और आपके लिये तो बात ही नहीं—आह्लादको रखनेका ठौर ही नहीं रहेगा। पर अभय दें तो करूँ।

आपकी 'बड़ो बाबूर बड़ो दिन' (बड़े बाबूका बड़ा दिन) में श्रीयुक्त पाँचकौड़ी बाबू जिसे 'मुन्शियाना' कहते हैं उसकी यद्यपि कोई कमी नहीं है (न रहनेकी ही बात है!) पर वह मुझे अच्छा नहीं लगा। मैं जानता हूँ कि इस विषयमें आपके दूसरे कद्रदाओं और मेरे मतभेदको आप स्पष्ट ही

अनुभव कर रहे हैं। हो सकता है कि उन्होंने आपसे कहा हो कि किसी पात्रको बंदर बना देनेकी आपकी क्षमता असाधारण है। मैं भी यह नहीं कहता, ऐसी बात नहीं। विद्रूप व्यंगके वाणोंसे मनुष्यकी किसी विशेष बंदर जैसी प्रवृत्तिकी पाठकोंके सामने खिल्ली उड़ानेमें आप पारंगत हैं। लेकिन मैं देखता हूँ कि मनुष्यको मनुष्यके रूपमें दिखानेकी क्षमता आपमें इससे कहीं अधिक है। कोई कोई अत्यन्त गम्भीर स्वभावके लोग जैसे अपने दुःखको भी कहनेके समय एक ऐसे ताच्छिल्यका पुट दे देते हैं कि अचानक लगता है कि वह किसी औरके दुःखकी कहानी कह रहे हैं। मानों इससे उनका कोई सम्बन्ध ही नहीं है। आप भी ठीक उसी तरह कहते हैं। घुमा फिराकर कातरोक्ति कहीं भी नहीं है—पर जीवनकी न जाने कितना बड़ी ट्रेजेडी पाठकोंके दिलपर चोट करती है। आपकी रचनाकी यह सहज शान्त मँजी हुई लिखनेकी भंगिमा ही मुझे सबसे अधिक मुग्ध करती है। इसीलिये उस दिन लिखा था कि 'चारयारी' कहानियोंको ठीक समझनेके लिये पाठकोंका शिक्षा और संस्कृतिके एक विशेष स्तरपर पहुँचना आवश्यक है। नहीं तो इसका सारा सौंदर्य उनके सामने निरर्थक हो जायगा।

लेकिन 'बन्दर' बनाते समय वह दबा हुआ ताच्छिल्यका स्वर रचनामें किसी भी दशामें रहना संभव नहीं है और रहता भी नहीं है। शायद इसी लिये 'बड़ा दिन' मुझे अच्छा नही लगा। उसकी शिक्षाके तमाशेको नहीं पकड़ पाया।

ऐसा भी हो सकता है कि मैं बिलकुल ही समझ नहीं सका। शायद यही बात हो। अतएव मेरे लिये अच्छा लगने न लगनेकी कोई कीमत नहीं भी हो सकती है। हो सकता है कि शुरूसे आखिर तक अनधिकार-चर्चा की है। अगर ऐसा हुआ हो तो माफ करें। अनधिकार-चर्चाकी बात मैं अति विनयसे नहीं कर रहा हूँ। क्योंकि मैंने पढ़ना लिखना नहीं सीखा है। अँगरेजीका अच्छा ज्ञान नहीं रहनेसे रचनाके भले बुरेके विचारकी क्षमता नहीं आती है। यह क्षमता भी शिक्षासापेक्ष है। बड़े बड़े लोगोंकी बड़ी बड़ी आलोचनायें जिन्होंने नहीं पढ़ी हैं वे स्वाभाविक अभिज्ञतासे यों ही एक प्रकारसे नहीं समझ पाते हैं, ऐसी बात नहीं लेकिन जो चीजें उनके प्रत्यक्ष अनुभवके बाहर हैं, उनके

भीतर एक क्षण भी वे प्रवेश नहीं कर पाते हैं। बाहर खड़ा हुआ बन्द किवाड़की ओर टकटकी लगा देख रहा है, पर वह यह भी समझ नहीं पाता है कि किवाड़ बन्द हैं, इसी लिये तो सभी चीजोंके सभी आलोचक हैं। समझते हैं कि शब्दोंके अर्थ जब समझमें आ रहे हैं तो सब कुछ समझ रहे हैं। अँग्रेजीकी बात इस लिये उठाई कि बंगला भाषामें आलोचनाकी पुस्तकें भी नहीं हैं और सीखनेकी बला भी नहीं है। इसे भी बाकायदा शागिर्द बनकर सीखना पड़ता है, यह धारणा भी नहीं है। मुझमें धारणा है, इसी लिये इतनी बातें लिखीं। इन बातोंको मैंने विद्वानोंके मुँहसे सुना है। अतएव मेरे अच्छा लगने न लगनेका मूल्य इसी अन्दाजसे लगायें। मैं जानता हूँ कि मैं ऐसी वैसी आलोचना लिखकर छापनेके लिये भेज दूँ, तो वह छप जायगी और इसके लिये आपकी अनुमति लेनेकी भी आवश्यकता नहीं, पर आपकी रचनाओंपर मुझे जरा अधिक श्रद्धा होनेके कारण ही अपनी अक्षमता सूचित कर आपकी राय जानना चाह रहा हूँ। अगर आपत्ति न हो, तो कुछ कहनेकी साध मिटा लूँ। मेरी दशहरेकी श्रद्धा स्वीकार करें।

—श्री शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय

१०

[श्रीमती लीलारानी गंगोपाध्यायको लिखित]

बाजे-शिवपुर (हवड़ा)
२४।७।१९१९

परम कल्याणीयासु। आपका पत्र और 'मिलन' शुरूसे आखिर तक पढ़ गया। मेरी पुस्तक अच्छी लगी है, ग्रन्थकारके लिये इससे बढ़कर दूसरा पुरस्कार और क्या हो सकता है?

आपने भक्तिकी माँग की है। भक्ति जहाँ केवल विनय नहीं है, सच्ची वस्तु है वहाँ इसका दावा अवश्य ही है। पर भक्ति किसकी करते हैं, इसपर भी जरा विचार करना आवश्यक है।

आपसे मेरा परिचय नहीं, इसलिये अधिक प्रश्न करना शोभा नहीं देता है। फिर भी पूछनेकी इच्छा होती है। आप जब ब्रह्म-समाजकी नहीं हैं, तो विधवा-विवाह क्यों कर देना चाहती हैं?

यह क्या क्षणभरकी तरंग है या हेम और गुणीकी हालत देखकर करुणा उत्पन्न हुई है? इसमें क्या आपको वास्तविक आपत्ति नहीं है? अगर यह है, और अगर 'मिलन' हो जानेसे चित्त प्रसन्न होता है, तो मिलनका कोई विशेष मूल्य है, ऐसा मैं नहीं समझता।

पर रचनाके तौरपर अर्थात् रचनाके भले बुरेके विचारसे इस रचनाका मूल्य निश्चित करना एक छोटी चिट्ठीका काम नहीं।

आपने मेरी सारी पुस्तकें पढ़ी हैं कि नहीं, नहीं जानता। अगर पढ़ी हैं तो कमसे कम यह बात निश्चय ही देखी होगी कि कितने ही बड़े और सुन्दर जीवन समाजमें केवल विधवा-विवाह नहीं होनेके कारण ही सदाके लिये व्यर्थ और निष्फल हो गये हैं। इससे अधिक अपने बारेमें मुझे कुछ नहीं कहना है।

—श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

बाजे-शिवपुर, हवड़ा
२६ । ७ । १९१९

परम कल्याणीयासु। आपका पत्र मिला। मुझे पत्र लिखकर उत्तरकी आशा करना अत्यन्त दुराशा है। मेरी इस सुन्दर आदतकी खबर आपको कैसे लग गई, यही सोच रहा हूँ। क्यों कि बात इतनी सच्ची है कि इसका प्रतिवाद करना मेरे लिये बिलकुल असम्भव है। सचमुच ही लोगोंको मुझसे जवाब नहीं मिलता—मैं इतना बड़ा आलसी हूँ।

फिर भी आपको दो दो चिट्ठियाँ कैसे लिखीं यह सोचनेपर देखता हूँ कि आपने जो भक्तिका दावा किया है उसीने इस असम्भवको सम्भव किया है। वस्तुतः यह वस्तु मनुष्यसे न जाने कितने विचित्र काम करवा लेती है। मुझे जो भाईकी तरह भक्ति करती है उसीको पत्र लिख रहा हूँ, उसीकी बातोंका जवाब दे रहा हूँ, इसके अन्दर कितना विशाल गर्व प्रच्छन्न है!

आपको कुछ सिखाया नहीं, आँखोंसे कभी देखा नहीं। किसकी कन्या, किसकी बहू, क्या परिचय है, कुछ भी नहीं जानता। पर अपनेको जब मेरी छोटी बहन कह रही हैं,—यह सौभाग्य कदाचित् ही किसीको मिलता है—तब यह जिसके भाग्यमें होता है, उसपर एक प्रकारका नशा छा जाता है।

मुझे नहीं जानते हुए और एक हिन्दू घरकी बहू होकर भी आपने मुझे निःसंकोच पत्र लिखा है। यह सच है कि ऐसा सबसे नहीं हो सकता लेकिन मैं भी आपको निःसंकोच पत्र लिख सकता हूँ, प्रश्न कर सकता हूँ, यह आशंका आपके मनमें नहीं थी, इसीसे लिख सकी हैं। होती तो नहीं लिख सकतीं। मेरे प्रति इतना विश्वास आपके अन्दर था ही। अन्यथा मेरा इतनी पुस्तकोंका लिखना व्यर्थ होता।

अच्छी बात है। छोटी बहनकी तरह तुम्हें जब इच्छा हो मुझे चिट्ठी लिखना। मेरी सच्ची शिष्या और सहोदरासे अधिक एक व्यक्ति है। उसका नाम है निरुपमा। जो आजके साहित्य-जगतमें शायद आपसे अपरिचित न हो। 'दीदी' "अन्नपूर्णाका मन्दिर,' और ' विधि-लिपि ' आदि उसीकी रचनाएँ हैं। पर यही लड़की एक दिन जब अपनी सोलह सालकी उम्रमें अकस्मात् विधवा होकर सन्न रह गई, तो मैंने उसे बार बार यही बात समझाई कि "विधवा होना ही नारी-जीवनकी चरम हानि और सधवा होना ही चरम सार्थकता है, इन दोनोंमें कोई भी सत्य नहीं।" तबसे उसे समग्र चित्तसे साहित्यमें नियोजित कर दिया। उसकी सभी रचनाओंका संशोधन करता और हाथ पकड़कर लिखना सिखाता था—इसीलिये आज वह आदमी बनी है। केवल नारी होकर नहीं।

यह मेरे लिये बड़े गर्वकी वस्तु है।

तुमने लिखा है—जिसने पतिको जाना नहीं, पहचाना नहीं, ऐसी बाल-विधवाके ब्याहमें क्या दोष है? तुम्हारे मुखसे इतनी बातकी बहुत कीमत है। और मेरी रचनाएँ अगर एक भी बाल-विधवाके प्रति तुम्हारे अन्दर करुणा उत्पन्न कर सकी हों, तो मुझे बहुत बड़ा पुरस्कार मिला है।

अब तुम्हारी रचनाओंके सम्बन्धमें कुछ कहूँगा। आज कल अनगिनत बंगला उपन्यास निकल रहे हैं। उनमें दो चीजोंको मैंने लक्ष्य किया है। पहली

बात यह है कि पुरुषोंकी रचनाएँ प्रायः अन्तःसारहीन और अपाठ्य हैं। यही नहीं, उनमें पन्द्रह आना दूसरोंकी चुराई हुई हैं और इसमें वे लज्जा तकका अनुभव नहीं करते हैं। किताबोंके बिक जानेको ही वे काफी समझते हैं।

दूसरी बात यह देखी है कि स्त्रियोंकी रचनाओंमें और चाहे जो हो, कमसे कम वे दूसरोंकी चुराई हुई नहीं हैं। उन्होंने अपने छोटेसे परिवारमें जो कुछ देखा है, अपने जीवनमें यथार्थका जो अनुभव किया है, उसीको कल्पनाद्वारा प्रकट करनेकी चेष्टा है। अतएव उनमें कृत्रिमता भी अधिक नहीं है।

तुम्हारी रचनामें जो सत्साहस और सरलता है, उसने मुझे मुग्ध किया है। रचना बहुत अच्छी नहीं होनेपर भी अपनी अकृत्रिमतासे ही सुन्दर बन पड़ी है। मुझसे परिशिष्ट लिखवानेमें समय नष्ट मत करवाओ, स्वतन्त्र रूपसे पुस्तक लिखो। मैं आशीर्वाद देता हूँ, तुम किसीसे हीन न रह सकोगी।

यहाँ तुम्हें एक उपदेश देना चाहता हूँ। नारीके लिए पति परम पूजनीय व्यक्ति है, सबसे बड़ा गुरुजन है। लेकिन इसके माने यह नहीं कि स्त्री पुरुषकी दासी है। यह संस्कार नारीको जितना छोटा, जितना तुच्छ कर देता है, उतना और कुछ नहीं।

जब कभी पुस्तक लिखना, इसी बातको सबसे अधिक याद रखनेकी चेष्टा करना। पतिके विरुद्ध कभी विद्रोहका स्वर मनमें नहीं लाना चाहिये। लेकिन पति भी मनुष्य है, मनुष्यको भगवानके रूपमें पूजा करना केवल निष्फल ही नहीं, इससे वह अपनेको भी और पतिको भी छोटा बना देती है।

तुमसे एक प्रश्न और करूँगा। "जिस विधवाने पतिको जाना नहीं, पहचाना नहीं...।"

लेकिन जिसने एक बार जाना है, पहचाना है, अर्थात् जो १६, १७ वर्षकी उम्रमें विधवा हुई है उसे क्या अपने लम्बे जीवनमें और किसीसे प्यार करने या ब्याह करनेका अधिकार नहीं? क्यों नहीं? जरा सोच देखनेपर पता चल जायगा कि इसमें यही संस्कार छिपा हुआ है कि स्त्री पतिकी वस्तु है। स्त्रीके रूपमें नारीकी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है।

"हेम संशयके अन्दर दिन बिता रही थी। जिसमें दृढता नहीं है, उसके लिये क्या बन्धन ही अच्छा नहीं?"

बन्धन केवल तभी अच्छा होगा, जब इस प्रश्नका अन्तिम निर्णय हो जायगा कि विवाह ही नारीके लिये सर्वश्रेष्ठ श्रेय है।

लेकिन मैंने कहीं भी विधवा-विवाह नहीं करवाया है, यह बात तुम्हें विचित्र लग सकती है।

इसका उत्तर यह है कि संसारमें बहुतेरी विचित्र चीजें हैं और चेष्टा करने-पर भी उनके कारण नहीं मिलते।

तुम मेरा आशीर्वाद लेना।—

—श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

मंगलवार, ५ अगस्त, १९१९
बाजे शिवपुर—हबड़ा

परम कल्याणीयासु। आपकी कापी और अन्दरकी दूसरी रचनाएँ यथासमय मिल गई हैं और इतनी जल्दी उत्तर देने बैठा हूँ, यह देखकर अपने आपको ही खुशी हो रही है। ऐसा लग रहा है कि इस बार आपको बहुत-सी बातें कहनेकी आवश्यकता है। लेकिन आपकी तरह सिलसिलेवार पत्र लिखनेकी शक्ति मुझमें इतनी कम है कि हितैषी मित्रगण साफ साफ सुना देते हैं कि मेरे नितान्त विशृंखल और यत्रों जैसे बिखरे हुए पत्रोंको पूरा पढ़नेमें उनके लिये धैर्य कायम रखना कठिन हो जाता है, और अगर वह किसी तरह समाप्त होते हैं, तो अर्थ समझनेके लिये एड़ी चोटीका पसीना एक करना पड़ता है। अभियोग बिलकुल निराधार नहीं है; अत्यन्त विनयकी दोहाई देकर भी इसका प्रतिवाद नहीं किया जा सकता। और इसके नमूनेसे आपको वंचित नहीं किया है, इस खबरको गुप्त रूपसे अगर आप अपने इष्ट मित्रोंमें प्रकट कर देंगी, तो मैं नाराज नहीं हो जाऊँगा।...

बहुतेरी ब्राह्म-महिलायें मेरी मित्र हैं। उन्हें पत्र लिखने और मित्रकी भाँति ही निःसंकोच होकर लिखनेमें मुझे झिझक नहीं होती। लेकिन हमारा

समाज और उसके नियम कानून ऐसे हैं कि छोटी बहन तकको चिट्ठी लिखनेमें केवल संकोच ही नहीं शंका भी होती है कि कहीं आपके अभिभावक या पति कुछ समझ बैठें और उसके लिये आपको दुख उठाना पड़े।... फिर भी जो आपको इतनी बातें लिखने बैठा हूँ, इसका यही कारण है कि स्त्रियोंके बारेमें मेरा जितना अनुभव है, उससे आपके पत्रोंको पढ़कर मुझे बारम्बार यही लगा कि जिस उम्रमें नारीमें आत्ममर्यादा उत्पन्न होती है, यह उसी उम्रको लिखी हुई है। यह गांभीर्य, यह साहस और संयम नारियोंमें पच्चीसके इधर पैदा होते देखा है, ऐसा मुझे नहीं लगता। हाँ, आपके बारेमें मैं गलती भी कर सकता हूँ। लेकिन गलती न होनेसे ही मैं निश्चिन्त होऊँगा। क्योंकि नितान्त तरुण वयसकी आत्मीय रमणीसे पत्र-व्यवहार करनेमें क्यों द्विधा और संकोच होता है; अगर उस उम्रको पार कर गई हैं, तो अनायास ही समझ जायँगी। लेकिन सबसे बड़ी बात यह है कि तुमने मुझे बड़ा भाई (दादा) कहा है। बड़े भाईके सामने छोटी बहनके लिये शर्मानेकी कोई विशेष बात नहीं। बड़े भाईके सम्मान और मर्यादाको अक्षुण्ण रखते हुए तुम्हें जब इच्छा हो, और जो इच्छा हो, लिखना और जितना चाहे, बड़े भाईपर अत्याचार उपद्रव करना, मुझे आनन्द ही होगा!

तुम्हारी चिट्ठीका और लेख लिखनेका ढंग तथा भंगिमा देखकर मुझे बारम्बार बूड़ि (निरुपमा) की याद आती है। तुम लोगोंकी लिखावट तक मानों एक है।

पानीमें भींगनेके कारण इन चार-पाँच दिनोंसे ज्वर-सा हो गया है। कहीं बाहर नहीं जा पानेके कारण तुम्हारी कापीको बड़े ध्यानसे पढ़नेका अवकाश मिला। पढ़ते पढ़ते कैसा लगा, जानती हो? एक कीमती चीजोंकी दूकानमें बेसिलसिले बिखरी पड़ी चीजें देखकर उन चीजोंकी कीमत जो जानता है, उसे जैसा कष्ट होता है ठीक वैसा ही। ठीक इसी हालतमें एक दिन बूड़िकी (निरुपमा) रचनाएँ भी मिली थीं।

दीदी, तुम्हारे पास बहुत कीमती माल-मसाला मौजूद है। पर वह बहुत ही विशृंखल है। मेरा पेशा भी यही है, इससे बारम्बार यही लगता है कि उसकी

तरह तुम्हें भी हाथ पकड़कर साल भर भी सिखा सकता, तो इसके पहिले मैंने तुम्हें जो आशीर्वाद दिया था, उसकी डालियोंके फूल-फूलोंसे भर उठनेमें अधिक देर नहीं लगती और 'दीदी' की कोटिकी एक और पुस्तक लोगोंकी नजरोंके सामने आनेमें बहुत विलम्ब न होता। लेकिन जब यह होनेका नहीं, तो दुःख करनेसे क्या होगा! मनमें सोचता हूँ, इस तरहके सैकड़ों व्यक्ति केवल थोड़ा-सा सिखा देनेके अभावके कारण नष्ट हो रहे हैं। कौन उनकी खबर लेता है? जो केवल कूड़ा करकट है, जिनमें केवल चोरी करनेके सिवा और कोई शक्ति नहीं, वे ही टोकरियों गंदगीसे बंगला साहित्यको दूषित और भाराक्रान्त कर रहे हैं। पर जिन्होंने संसारमें सत्यकी उपलब्धि की है, अपने जीवनसे जिन्होंने स्नेह और प्रेमके स्वरूपका अनुभव किया है, वे अन्तरालमें ही पड़े रहते हैं। दुखकी आगमें जलकर जिनकी अनुभूति शुद्ध और सत् नहीं हो पाई, उन्हींपर आजकल साहित्य-सर्जनका भार आ पड़ा है, इसीलिए साहित्य आजकल इस तरह नीचेकी ओर जा रहा है।

लीला, केवल हृदयमें अनुभव करनेसे ही किसी चीजको भाषामें व्यक्त नहीं किया जा सकता। सभी चीजोंको कुछ न कुछ सीखना पड़ता है और यह सीखना सदा अपने आप नहीं होता। लेकिन क्या करूँ दीदी, तुम्हें सिखाकर निरुपमाकी तरह बना सकूँ, इतना अवकाश नहीं है। और जो नहीं है उसके लिये अफसोस करनेसे क्या होगा!

जो कुछ भी हो तुम्हें मोटे रूपमें एक उपदेश देना है। रचनाको अध्यायोंमें विभक्त करना चाहिये और रचनाका चौदह आना भाग लेखकके मुँहसे न कहलाकर पात्र-पात्रियोंके मुँहसे कहलाना चाहिये। जहाँ ऐसा नहीं किया जा सकता, केवल वहीं लेखकके मुँहकी बातोंसे पाठकोंका धीरज नहीं छूटता है। और एक बात यह है कि अधिक छोटी मोटी बातोंको लेकर अपनेको और पाठकोंको दुख न देना चाहिये। बहुतेरी बातें उनकी कल्पनाके लिये रख छोड़नी चाहिये। लेकिन कुछ लेखक कहे और कुछको पाठक पूरा कर ले, यह वस्तु शिक्षा-सापेक्ष भी है और बुद्धि-सापेक्ष भी।

अबसे तुम्हारी शिक्षा शुरू है। अध्यायोंमें बाँटकर मेरी पुस्तकोंके ढंगपर लिखना आरम्भ करो और दो अध्याय लिखकर मेरे पास भेजो। मैं काट-कूट कर (अपनी सामान्य शक्तिके अनुसार) तुम्हें वापस कर दूँगा और उसीके साथ काटनेका कारण भी लिख दूँगा। यह परिश्रम मैं क्यों करूँगा, जानती हो लीला ? तुम्हारे द्वारा सचमुच ही साहित्यके मन्दिरमें पूजाकी सामग्री जुटानेके लिये और यह आशा करता हूँ कि वह चीज बहुत तुच्छ मूल्यकी न होगी। यदि तुम्हारे अन्दर इस वस्तुका मूल्य स्पष्ट नहीं देखता, तो तुम्हें सिर्फ राजी रखनेवाली भद्रताकी या दूसरी खुशामदकी बातें लिखकर अपना और तुम्हारा दोनोंका समय नष्ट नहीं करता।

मेरी इस बातको याद रखना, मेरे आशीर्वादसे तुम किसीसे कम भी न होगी।

तुम्हारी कापी दो चार दिनोंके बाद वापस कर दूँगा। 'काली' कहानीको मेरी परिणीताकी तरह और एक बार अध्यायोंमें बाँटकर नहीं भेज सकती हो ? दीदी, पहले बहुत दुख, बहुत कष्ट उठाना पड़ता है, असहिष्णु होनेसे काम नहीं चलता। यह वस्तु इतने दुख और इतने परिश्रमकी होनेके कारण ही इसका इतना मूल्य है। पहले ऐसा लगता है कि बहुत-सा परिश्रम व्यर्थ जा रहा है। लेकिन कोई परिश्रम कभी यथार्थमें नष्ट नहीं होता,—किसी न किसी रूपमें उसका फल मिलता ही है। रात बहुत हो गई है, ऊपर जानेके लिये वह बहुत चिल्ल-पों मचा रही है, इस लिये आज यहीं समाप्त करता हूँ। आज भी पेटमें अन्न नहीं पड़नेके कारण चिट्ठीमें गड़बड़ी रह गई। जरा कष्ट उठा कर पढ़ना और कहीं अगर कोई बात सिलसिलेवार नहीं है तो 'बड़े दादा' होनेके कारण मुझे माफ करना। मेरा आशीर्वाद लेना। रातके साढ़े बारह बजे।

—तुम्हारा दादा।

जब ठीक लगेगा तब स्वयं ही मासिक पत्रमें छपनेके लिए भेज दूँगा। मेरे भेजनेसे कभी कोई सम्पादक 'ना' नहीं करता। वह जानते हैं कि उपयुक्त न होने पर मैं नहीं भेजता। गृहस्थीके कामोंके कारण तुम्हें बहुत कम समय मिलता है यह ठीक है। फिर भी यह सच है कि अनवकाशके अन्दर

तो शायद कभी समय मिल जाता है, लेकिन अवकाशके अन्दर कभी काम करनेका अवकाश नहीं मिलता।

बाजे शिवपुर, हावड़ा
१४।८।१६

परम कल्याणीयासु। कल और आज तुम्हारी बड़ी और छोटी दोनों चिट्ठियाँ मिलीं। पहले अपना समाचार दे दूँ। मैं हमेशा सारे दरवाजे और खिड़कियाँ खोलकर सोता हूँ। उस दिन चार बजे नींद टूटने पर देखा तो बिस्तर तकिया और सब कपड़े छींटोंसे इस तरह भीग गये हैं कि जाड़ा लग रहा है और दुर्भाग्यकी बात यह कि उस दिन शामको भी रास्तेमें कम नहीं भीगा था। दोनोंको मिलाकर कुछ ज्वर-सा हो गया। लेकिन एक दिनमें ठीक नहीं हुआ, बढ़ता ही गया। अब वह उतर गया है। दूसरी बात और भी मजेदार है। कई दिनसे दाहिने पैरके घुटनेके कुछ नीचे इतनी जलन और खुजली हुई कि बेचैन हो गया। चार दिन पहले सबेरे उठकर देखा कि एक जगह लाल होकर एग्जिमा-सा हो गया है। कुछ कुछ सूजन भी है। कुछ दिनोंसे सुन रहा था कि इस तरफ 'बेरी बेरी' रोग खूब होता है, पर वह क्या है आज तक भी देखनेका मौका नहीं मिला। सोचा शायद उसीने पकड़ा है। उसके मारे बुरा हाल रहा। टिंक्चर आयोडीन लगाना शुरू कर दिया। लेकिन कई बार लगातार लगानेसे उसने ऐसा रूप धारण किया कि सचमुचके बेरी बेरीका होना कहीं अच्छा होता। डाक्टरने आकर बुरी तरह फटकारना शुरू किया—आपमें क्या किसी विषयमें भी तनिक भी सब्र नहीं है? अब कास्टिक या ऐसिड फेसिड लगाकर जो कुछ चाहें, करें, मैं चला। जो कुछ हो, बादमें ठण्डे होकर दवा और मालिसकी व्यवस्था करनेका हुक्म देकर कह गये—दोनों पैरोंको तकियेपर रखकर चुपचाप पड़े रहिये। क्या करूँ दीदी, इसीलिए पड़ा हुआ हूँ। तीसरी बात है, मैं कभी अम्लका रोगी नहीं रहा, इतना कम खाता हूँ कि वह भी पास नहीं फटकता कि कहीं उसे भी भूखों न मरना पड़े। उस दिन घरपर बनाये गये कुछ सन्देश

जबर्दस्ती खिला दिये। पर आज भी उनकी डकार आ रही है। मैं इस देशका मशहूर आलसी हूँ। चबानेके डरसे किसी चीजको आसानीसे मुँहमें नहीं डालता। मुझसे यह अत्याचार कैसे सहा जाय? क्या कहती हो दीदी, ठीक है? लेकिन घरके लोग नहीं समझते। वह सोचते हैं कि न खानेके कारण ही मैं दुबला हो गया हूँ। अतएव खानेसे ही उनकी तरह मोटा होकर हाथी हो जाऊँगा।

स्वर्गीय गिरीश बाबूने अपने 'आबू हसन' में लाख बातकी एक बात कही है—"अबलायें बड़ी लालची होती हैं, वह मरनेपर भी खाती हैं।" औरतकी जातिको उन्होंने पहचान लिया था।

आज बीस वर्ष पहलेसे हम केवल खानेको ही लेकर लाठी चलाते आ रहे हैं। उन्होंने नहीं खाया और न खाकर दुबले हो गये। घर-गृहस्थी और रसोई किसके लिये है? जहाँ दोनों आँखें ले जायँगी वहाँ जाकर बैरागिनी हो जाऊँगी, इत्यादि कितनी ही बातें। मैं कहता हूँ—अरे भाई बैरागिनी होना है तो जल्दी हो जाओ। तुम तो मुझे डर दिखा कर काँटेकी तरह सुखा रही हो। यथार्थमें मेरे दुखको किसीने नहीं देखा। मैं अक्सर सोचता हूँ कि अगर सचमुच ही कहीं स्वर्ग है, तो वहाँ एक आदमी दूसरेको खानेके लिए इतनी जबर्दस्ती नहीं करता होगा और अगर है तो मैं नरकमें जाना ही पसन्द करूँगा।

हाँ, एक बात और है। कोई बीस दिन पहले कुत्तेका झगड़ा मिटाने गया, तो कहींसे एक खौराहे कुत्तेने आकर मेरी हथेलीमें दाँत जमा दिया। अभागा कुत्ता कितना अकृतज्ञ है! उसे अपने 'भेलू' के चंगुलसे बचाने गया था। डरके मारे किसीसे कहा नहीं। सूख गया था, लेकिन कलसे फिर दर्द हो रही है।

लेकिन अब नहीं। फिलहाल यहीं अपने शारीरिक कुशलकी तालिकाको एक प्रकारसे समाप्त करता हूँ। लेकिन सुखकी बात है कि मैं वृद्ध हो गया हूँ। अबसे एक न एक बहाना करके चलना होगा। न जाने कितने प्रकारके दुख-दैन्य और आफत-विपतके बीचसे ४० वर्ष काटे हैं। सुना है मेरे वंशमें आज तक ४० तक कोई नहीं पहुँचा। कमसे कम इस बातमें तो मैंने अपने बाप-दादोंको हराया है! और चाहिये ही क्या?

जाने दो, बूढ़ोंके मरने जीनेको लेकर तुम लोगोंको उद्विग्न नहीं करना चाहता। लेकिन दीदी, तुम भी तो अच्छी नहीं हो ! शरीरका जतन रखना। परिश्रम करनेकी आवश्यकता नहीं, चंगी होकर घर लौट आओ, तब सब कुछ होगा। तुम्हारी कापीकी सारी रचनाओंको ध्यानसे पढ़ गया। इसमें सब कुछ है, लेकिन शिक्षा नहीं है। साहित्य सृजन करनेके कौशलको भी आयत्त करना चाहिए भाई; नहीं तो केवल अपनी अनुभूतिके सम्बलसे काम नहीं बनता। पर मैं इसी पेशेमें हूँ और जानता हूँ कि इतना सिखा लेनेमें मुझे अधिक देर नहीं लगेगी।

कितना लिखना चाहिए, किस चीजको छोड़ देना चाहिए, किसे पी जाना चाहिए—

" घटे जा ता सब सत्य नय,
कवि तव मन-भूमि, रामेर जनमस्थान
अयोध्यार चेये ढेर सत्य जेनो। "

इतनी बड़ी सच बात दूसरी नहीं है। दीदी, जितनी घटनाएँ घटती हैं उनमेंसे सारी नहीं लिखनी चाहिये। कुछको साफ साफ कहना चाहिए, कुछ इशारेसे, कुछको पाठकोंके मुँहसे कहलवा लेना चाहिये। हाँ, तुम्हारी जितनी सहायता कर सकता था, केवल पत्र लिखकर, काटकूट कर, दूर रहकर, उतनी नहीं होगी, फिर भी चेष्टा करनी ही होगी। और इस बार भी जाड़ेमें निकल सका, तो तुम्हारे हिन्दुस्तानियोंके देशमें १०—१५ दिनके लिये वहीं नजदीक ही मकान लेकर थोड़ी-सी सहायता करनेकी चेष्टा करूँगा। और अगर मेरे सनातन आलसने उस वक्त घेर लिया तो बस यहीं तक।

...महिलाएँ ? वे निरापद रहें, उनमेंसे बहुतोंके सामने तुम्हें लानेकी शायद मुझे प्रवृत्ति ही नहीं होती है। एक बात साफ कर दूँ। हो दूरसे सुननेमें ही...महिलाएँ हैं, उच्च शिक्षिता हैं ! दो-चारको छोड़कर वे मन ही मन मुझसे बहुत डरती हैं। उन्हें निरन्तर लगता है कि म उनके अन्दरको भलीभाँति देखे ले रहा हूँ। इसीलिये मेरे सामने उन्हें चैन नहीं मिलती है। उनका अन्तर इतना कृत्रिम है, संकीर्णतासे ऐसा भरा है ! वस्तुतः इन लोगों जैसे संकीर्ण मनकी स्त्रियाँ बंगालमें और नहीं हैं। दीदी, मैंने कभी भी खाने

छूनेका भेद नहीं किया है। लेकिन...महिलाओंके हाथोंका कुछ भी नहीं खाता ! खाता हूँ केवल उन्हींके हाथोंका जिनके माँ-बाप दोनों ब्राह्मण हैं और ब्याह भी ब्राह्मणसे हुआ है।...समाजकी हों, इससे कुछ बनता बिगड़ता नहीं लेकिन उस तरहकी मिली-जुली जातका छुआ मैं नहीं खाता। कहते हैं कि शरत् बाबू बड़ी बड़ी बातें लिखते-भर हैं, पर यथार्थमें बहुत कट्टर हैं। मैं कट्टर नहीं हूँ लीला, लेकिन केवल गुस्सेके कारण ही इनके हाथोंका नहीं खाता। और शायद यह भी देखा है...लड़कियोंमें साढ़े पन्द्रह आने कुरूपा होती हैं। सिर्फ साबुन, पाउडर और कपड़े-लत्तोंसे और आनुनासिक गलेसे जहाँ तक चल जाय ! केवल चार पाँच लड़कियोंको देखा है, जो सचमुच ही श्रद्धाकी पात्री हैं। बी. ए. पास होने पर भी हमारी बहनोंमें और उनमें अन्तर नहीं किया जा सकता। इतनी अच्छी हैं कि लगता है वे आज भी हिन्दू लड़कियाँ ही हैं।

लड़कियोंकी निन्दा कर रहा हूँ, इसलिये शायद तुम्हें बहुत क्रोध हो रहा होगा। लेकिन जानती तो हो दीदी, अन्दर अन्दर तुम लोगोंके प्रति मुझमें कितनी श्रद्धा कितना स्नेह है ! केवल उनका बनना, विद्याका प्रदर्शन और कुसंस्कार-वर्जित रोशनीका दंभ और जो सच नहीं है उसका भान, इन्हीं बातोंको देखकर मुझे इतनी अरुचि है।

उनके सामने तुम मज़ाककी पात्र बनोगी ! क्या कहूँ, इसमेंसे एकाध दर्जनको गाड़ीमें भर कर अगर तुम्हारे कानपुरको चालान कर सकता ! और कुछ न हो, भाईके काम आ सकतीं।

'दादाकी मर्यादा ?' कैसे जानोगी, तुम्हारे तो कोई दादा नहीं है !

तुम्हारे पतिके उदार विचारोंकी बात सुनकर बड़ी खुशी हुई। मैं हृदयसे उन्हें आशीर्वाद देता हूँ। लेकिन दीदी, उन्हें एक बात कहनेकी इच्छा होती है। मैंने स्वयं लड़कपनमें एक बार छह-सात सौ कुलत्यागिनी बंगालिनोंका इतिहास संग्रह किया था। बहुत समय, बहुत रुपये इसमें नष्ट हुए थे। लेकिन उससे मुझे एक विचित्र शिक्षा भी मिली था। बदनामी देश-भरमें फैल गई, पर इस बातको असंदिग्ध रूपसे जान सका कि जो कुल त्याग करके आती हैं उनमें अस्सी प्रतिशत प्रायः सधवायें हैं, विधवाएँ बहुत ही कम हैं ! पतिके जीवित रहनेसे ही

क्या और कड़े पहरेमें रखनेसे ही क्या ! और विधवा होनेसे भी क्या ! दीदी, अनेक दुःखोंसे ही नारी अपना धर्म नष्ट करनेके लिये तैयार होती है, और जिस लिये होती है, वह पर-पुरुषका रूप नही, किसी बीभत्स प्रवृत्तिका लोभ भी नहीं । जब वे अपनी इतनी बड़ी वस्तुको नष्ट करती हैं, तो बाहर जाकर किसी आश्चर्य वस्तुको पानेके लोभसे नहीं, सिर्फ किसी बातसे अपनेको मुक्त करनेके लिये ही इस दुःखको सिरपर उठा लेती हैं । इन सब बातोंको तुम शायद नहीं समझोगी और मेरा कहना भी शायद शोभा नहीं देता । लेकिन सबसे बड़ी बात यह है कि तुम तो केवल नारी ही नहीं हो, मेरी छोटी बहन भी हो न ! और संसारमें यह वस्तु नितान्त तुच्छ नहीं है ।

'कहानी'के भीतर कितना सच और कितनी कल्पना है, नहीं जानता । लेकिन अगर कल्पना है तो अवश्य ही बहादुरीकी बात है । देखता हूँ साहसका तो ठिकाना नहीं ! वह कौन है ? अब पवित्रके बारेमें कुछ कहना चाहिये । उसे अधिक दिनोंसे नहीं जानता हूँ सही, पर यह जानता हूँ कि वह निर्मल चरित्र और सचमुच ही बहुत अच्छा लड़का है । तुम्हें शायद 'दीदी' कह भी सके क्यों कि उम्रमें शायद तुमसे २-४ महीने छोटा ही होगा । उससे कभी किसी नारीकी अमर्यादा नहीं होगी, मेरा तो यही विश्वास है । उसे तुम चिट्ठी लिख सकती हो, कोई नुकसान नहीं । और इसके अलावा तुम भी तो विशुद्ध स्वर्ण हो न । किसका कैसा सम्मान है, कैसी मर्यादा है, मेरी दृढ़ धारणा है कि वह तुम्हारे निकट सुरक्षित रहेगी । सुनता हूँ कि इसी बीच वह प्रचार कर रहा है कि थोड़े ही दिनोंमें बंगला-साहित्यमें एक ऐसी लेखिका दिखाई पड़नेवाली है, जो किसीसे नीचे नहीं खड़ी होगी । कल एक आदमी उस 'मिलन'को छापनेके लिये मेरी खुशामद करने आया था । मैंने नहीं दिया । कहा कि पत्रिकाके उपयुक्त नहीं है । जल्दबाजीका जरूरत नहीं । बहुतेरे बहुत अच्छा कहेंगे, जानता हूँ । निन्दा करनेवालोंकी भी कमी नहीं होगी, यह भी जानता हूँ । मैं धीरज रखकर एक सालका इन्तजार कर जब मासिक पत्रिकामें छपनेके लिये दूँगा तब यह संदेह जाता रहेगा ।

मैंने तो तुम्हें शिष्या बनाना स्वीकार कर लिया है । पर देखना बहन, अन्तमें चूड़ीकी तरह गुरुको मारनेकी विद्या नहीं हासिल कर लेना । वह तो मुझसे बड़ी

हो ही गई है; हो सकता है अन्ततक तुम भी बड़ी हो जाओ। संसारमें विचित्र कुछ भी नहीं, कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

लेकिन इसे स्वीकार करूँगा तब, जब तुम लिखकर सूचित करोगी कि तुम चंगी हो गई हो, अब कोई रोग नहीं है। नहीं तो दिलकी बीमारीवाले आदमीको शागिर्द नहीं बनाऊँगा। उसे पहले डाक्टरका प्रमाण-पत्र पेश करना होगा, इस बातको बताये देता हूँ। मैं परिश्रम करके सिखाऊँगा और तुम अचानक चल बसोगी, मेरे परिश्रमको बेकार करोगी, यह नहीं होनेका।

तुमने एक बार लिखा था 'आपका परिचित श्रीरामपुर', । और 'जयरामपुर' क्या अपरिचित है ? उसके मलेरिया और बर्रोंकी तरह मच्छड़ोंका झुण्ड आसानीसे भूल जाय, ऐसे आदमी तो शायद ही मिलें। पिछले बैसाख महीनेमें इसी डरसे बहू-भात (खिचड़ी) का आमन्त्रण नहीं स्वीकार कर सका। जयरामपुरकी एक और लड़की मुझे दादा कहती है और मैं कहता हूँ उसे छोटी दीदी।

देहरी जा रही हो ? जब तुम्हारा जन्म भी नहीं हुआ था, तब मैं उस देहरीकी नहरके किनारे पकी खिन्नियाँ बटोरता था और फन्दा डालकर गिरगिट पकड़ता था। ओह, वह कितने दिनोंकी बात है ! जब रेल नहीं बनी थी तब छोटे स्टीमरपर चढ़कर आरासे जाना पड़ता था। तुम्हारे बंगलेको भी मैं शायद आँखोंसे देख रहा हूँ। अच्छा, तुम्हारे घरसे निकलते ही दाहिने हाथ सूरज नहीं निकलता है ? उन दिनों सती-चौरा या इसी तरहके किसी नामका घाट था। तुम्हारे यहाँसे शायद दो मील होगा। कुछ काल वहाँ जाकर बैठा करता था। नहीं जानता, उस घाटका अस्तित्व आज भी है या नहीं ?

'घुमक्कड़' को आने जानेमें कहीं कोई बाधा नहीं दिखाई पड़ती। अच्छा, बर्माकी इतनी बातें कैसे जान लीं ? वहाँका मजिस्ट्रेट (डिप्टी) म्यूक था, यह किसने बतलाया ? मांडलेसे स्टीमरसे जाने आनेका रास्ता है, यह किससे सुना ? अगर सचमुच ही बर्मामें रही हो, तो कहाँ थीं ? उस देशका कोई भी स्थान नहीं, जिसे किसी न किसी दिन इन दोनों पैरोंने नहीं नापा हो, फिर भी मेरे जैसे आलसियोंके बादशाह संसारमें कम ही हैं।

'राजलक्ष्मी' कहाँ मिलेगी ? वह सारी मनगढ़न्त कहानी है। श्रीकान्त उपन्यासके सिवा और कुछ नहीं है। उन निराधार अफवाहोंपर ध्यान नहीं देना चाहिये। कहानी क्या सच है ? किसकी कहानी ? तुम जीती रहो, दीर्घजीवी बनो, बारम्बार यही आशीर्वाद देता हूँ। मेरे कहनेपर भी कभी स्वास्थ्यके प्रति भूलकर भी लापरवाही नहीं करना। तुम्हें देखा नहीं है, फिर भी न जाने क्यों तुम्हारे प्रति बड़ा स्नेह उत्पन्न हो गया है। यह शायद तुम्हारी नसीबकी बात है। मुझे ऐसा लग रहा है कि अगर ऐसा आलसी नहीं होता, तो जाड़ेमें केवल तुम्हींको देखनेके लिये कानपुर आता। लेकिन कभी यह होनेका नहीं, यह भी जानता हूँ।

तुम्हारे दोनों बच्चोंको बहुत बहुत आशीर्वाद देता हूँ। उन्हें मा-बापका गुण मिल गया तो संसारमें सार्थक होंगे। लेकिन तुम्हें जीवित रहकर उन्हें आदमी बनाना होगा। मर जानेसे काम नहीं चलेगा। ऐसा होनेपर मुझे भी शायद सचमुच ही बड़ा कष्ट होगा।—दादा

सच कहता हूँ कि तुम्हारी सिलसिलेसे लिखी चिट्ठीके सामने मुझे इस बेतरतीब चिट्ठी भेजनेमें लज्जा आती है।

आजकी कहानीके प्रथम अध्यायकी बात अगली चिट्ठीमें लिखूँगा।

बाजे शिवपुर, ७ भाद्र, १३२६

परमकल्याणीयासु। तुम्हारी चिट्ठी मिली। कुछ कामकी बातें हैं। बूड़ीसे मुझे बड़ी आशा थी। लेकिन वह 'दीदी'के अलावा और कुछ नहीं लिख सकी।

क्यों, जानती हो ? वार-व्रत, जप-तप इत्यादिके पचड़ेकी आगमें उसके अन्दर जो मधुर था, वह उम्रके साथ ही सूख गया। हाँ, अतिरेक न हो तो हमारे घरोंकी कौन स्त्री है जो इन बातोंको कुछ कुछ नहीं करती ? जाने दो। तुमसे मुझे द्वितीय आशा है। तुम्हारी जो उम्र है, यही मनुष्यके रवाना होनेकी उम्र है। इसीलिये मैं तुम्हें सिखा लेना चाहता हूँ। और इसी लिये ही तुम्हारी किसी रचनाको छपने देनेके लिये तैयार नहीं हुआ। मैं अच्छी तरह

जानता हूँ कि अपनी रचना अपने नामसे छपे अक्षरोंमें देखनेकी साध बहुतोंको होती है। लेकिन यह भी जानता हूँ कि तुम एक साल सब्र करोगी।

लेकिन सिखानेकी वह सुविधा नहीं है। होना भी सम्भव नहीं है। फिर भी एक बार शायद उधर आऊँगा। जहाँ कहीं भी रहूँ तुमसे एक बार मुलाकात होना ही सम्भव है। तुम्हें लग सकता है कि इन्हींकी किताबें तो पढ़ती हूँ, उन्हें पढ़कर भी अगर सीख नहीं सकती, तो ये दो दिनमें सिखा कर ऐसा क्या राजा बना देंगे। यह बात बिल्कुल सच है। यथार्थमें यह सिखानेकी चीज भी नहीं है। फिर भी "यही जैसे तुलसीने मृत्युके समय उसका...... इत्यादि इत्यादि।" मैं उपस्थित होता तो लिखनेके पहले तुम्हें यह कह देता कि जो तुलसी मर गया है, जो पूरी कहानीमें अब नहीं आयेगा उसके सम्बन्धमें पहले ही दो पृष्ठोंका इतिहास पाठकोंको क्लान्त कर देता है। मैं होता तो कहाँसे शुरू करता, यह कहनेके पहले यही कहना चाहता कि आरम्भ करना ही सबसे कठिन होता है। इसीपर प्रायः सारी पुस्तक निर्भर करती है।

मान लो अगर इस तरहसे शुरू होता—एक दिन तुलसीकी मृत देह श्मशानमें, राखमें परिणत हो रही थी। उसकी तेरह सालकी लड़की मंजरी निकट ही स्तब्ध खड़ी थी। उसके मुँहपर निर्वाणोन्मुख चिताकी दीप्त रश्मि न जाने कितनी देरसे विचित्र रेखाओंके खेल खेल रही थी किसीने ध्यान नहीं दिया। अचानक एक समय उसीपर तारा ठकुरानीकी दृष्टि पड़ते ही मानों वह चकित हो गई। खयाल आया कि जिसके नश्वर देहकी अभी अभी समाप्ति हुई है, वही मानों अकस्मात् अपने बचपनकी मूर्ति धारण किये खड़ा है। उसी तरहका अतुलनीय रूप, उसी तरहका शान्त माधुर्य, मुँहपर मानों गहरे विषादकी छाया पड़ी हुई है। और इस सद्यः मातृहीनाके मुँहकी ओर देख देख कर उनकी चिन्ताका सूत्र अतीतके कितने ही दुख-सुखोंकी कहानियोंके अन्दरसे छाया-चित्रकी भाँति संचरण करने लगा। उसे याद आई उस दिनकी बात, जब तुलसीने पतिको खोकर बिलकुल निराश होकर पहले पहल उसके घरमें पैर रखा था। उसके बाद किस प्रकारसे उसने अपने पूर्ण विकसित रूपके लावण्यको लोगोंकी नजरोंसे बिल्कुल गुप्त ही, उसकी छोटी-सी गृहस्थीमें सोलहों आने एक कर दिया इत्यादि......

इस अतीतके इतिहासको जितने संक्षेपमें समाप्त किया जा सके करना आवश्यक है। क्योंकि इस बातको ध्यानमें रखना ही होगा कि पुस्तकमें वह फिर नहीं आवेगा, अतएव उसके चरित्रको निखारनेकी अधिक आवश्यकता नहीं होती।

इसके बाद कहानी लिखनेमें पहले जिसे प्लाट कहते हैं उसके प्रति ही अतिरिक्त ध्यान देनेकी आवश्यकता नहीं। जो जो लोग तुम्हारी पुस्तकमें रहेंगे पहले उनके चरित्रको अपने अन्दर स्पष्ट कर लेना चाहिये। जैसे मान लो जिन्हें तुम भली भाँति जानती हो, तुम्हारे पिता या तुम्हारे पति। इसके बाद ये दोनों चरित्र अपने गुण-दोषोंको लिये हुए किस मामलेमें निखर सकते हैं उसीको निश्चित कर लेना चाहिये। मान लो, तुम्हारे पिता अपने कामोंके अन्दर, अपने मामले मुकदमोंमें, तुम्हारे पति अपने मित्रकी नौकरीमें, उदारतामें या त्यागमें, अच्छी तरह पूर्णता प्राप्त कर सकते हैं, केवल तभी कहानी खड़ी करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। नहीं तो पहिलेहीसे कहानीका प्लाट लेकर माथा-पच्ची करनेकी आवश्यकता नहीं होती। जिसे पड़ती है उसकी कहानी व्यर्थ हो जाती है।

और भी बहुतेरी छोटी मोटी चीजें हैं, जिन्हें लिखनेके साथ साथ जबानी कहे बिना चिट्ठी लिखकर बताना कठिन है। इन्हींको तुम्हें किसी दिन बता आऊँगा। लेकिन वह दिन कब आवेगा, इसे मेरे विधाता ही जानते हैं।... ...मेरा अनगिनत आशीर्वाद लेना।—तुम्हारे दादा श्री शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय

बाजे शिवपुर,
२४-११-१६

परम कल्याणीयासु। कल रातके साढ़े दस बजे दीदीके घरसे लौटनेपर आज सबेरे तुम्हारी और सरोजकी चिट्ठी मिली। उसकी चिट्ठी अँग्रेजीमें है। मैं वैसी अंग्रेजी नहीं जानता इसलिये अच्छी तरह समझ नहीं पाया। किसी विद्वान् इष्ट मित्रके आनेपर पढ़ाकर बादमें जवाब दूँगा।

दीदीकी सासका क्रिया-कर्म बड़े धूमधामसे किया गया। मैं दूसरे काममें

व्यस्त था। उनके इलाकेमें इनफ्लुएँजा बुखार बहुत ज्यादा है, गरीब दुखी कुछ कम नहीं मर रहे हैं। दवाओंकी संदूक ले गया था, खुद केवल दोको ही मार सका, और कुछ ठहर सकता तो और नहीं तो दो तीन शिकार मिल जाते। बदकिस्मतीसे पस्त हो गया। (दवा और खास करके पथ्यकी कमीसे ही तुम्हारे भगवानके चरणोंमें उन्हे तेजीसे आश्रय मिल रहा है।) फिर भी वापस आ गया था कुछ दवा आदि इकट्ठा करनेके लिए। मगर ऐसा लग रहा है कि कल सबेरे तक अपना ही बुखार काफी स्पष्ट हो जायगा। आज किसी तरह दबा हुआ है। और इसी तरह दबा रहा तो परसों फिर जाऊँगा।

—तुम्हारा दादा।

बाजे शिवपुर (हवड़ा)
३०-३-१९२१

परम कल्याणीयासु,......वारिशाल कान्फ्रेंसमें जानेकी मेरी बड़ी इच्छा थी। पर अपनी नई पाठशालाके काममें इतना व्यस्त था कि जानेका समय नहीं मिला। अपनेको अब पहलेके परिचित सभी कामोंके बाहर खींच ले जानेकी चेष्टा कर रहा हूँ। इसमें अनेक सांसारिक त्रुटियाँ, अनेक प्रकारके दुख-कष्टोंकी बातें घटित होंगी—उन्हें सहनेके लिए अब बुलावा आया है। इसके अलावा इस लम्बे जीवनके जालमें कितनी ही गाँठें पड़ चुकी हैं। पर इतमीनानसे बैठकर उन्हें खोलनेकी उम्र अब नहीं है। इसलिए कुछ जल्द-बाजी ही चल रही है।

शायद तुम्हारे पिताकी तबीयत आजकल अच्छी है। सरोजकी चिट्ठीसे ऐसा ही लगा।

मेरी खबर पहुँचा देनेके लिए तुम्हें लोग मिल ही जायँगे। अतएव इस विषयमें मैं निश्चिन्त हूँ। दादाका सदाका स्नेह और आशीर्वाद लेना। तुम लोग केवल इसी बातके लिए प्रार्थना करो कि फिर विक्षिप्त न हो जाऊँ!

—तुम्हारा दादा

बाजे शिवपुर (हावड़ा)
२७ जून १९२१

परमकल्याणीयासु,—लीला, आज तुम्हारी चिट्ठी मिली। तुम्हें जवाब नहीं दे सका, यह केवल समयकी कमीके कारण ही। दीदी, यथार्थमें ही इस समय मुझे जरा भी फुर्सत नहीं है। कांग्रेसका काम सार्थक हुआ, तो फिर शायद समय मिले। आज कल मुझे निरन्तर दो वर्ष पहलेवाले महात्मा गान्धीके सत्याग्रहके दिन याद आते हैं।

मैं एक वालंटियर था। मेरे बगलका आदमी और सामनेके छह सात जन सब 'जान गई' कहकर गोली खा गिरकर मर गये। उस वक्त मैं भागा नहीं, मुझे लगी नहीं थी। कितनी ही बार आश्चर्य होता है कि उस दिन मशीनगनकी गोली क्यों नहीं लगी ! आज लगता है उसकी भी आवश्यकता थी।...दादा

बाजे शिवपुर, हावड़ा
१ जनवरी, १९२३

परम कल्याणीयासु। गयासे लौट आया। कांग्रेसके समाप्त होनेके पहिले ही चला आया था, तबियत बिलकुल खराब हो जानेके कारण। सोचा था जानेके पहले ही तुम्हें चिट्ठी लिखूँगा, पर लिख नहीं सका। गया पहुँचकर वहाँ लिखनेकी सोची, पर वह भी नहीं हुआ। अब लौटकर जवाब दे रहा हूँ। यह जो अब लिखूँ तब लिखूँ, सोचता हूँ पर लिखता नहीं, इसकी भी एक कीमत है, नितान्त तुच्छ बात नहीं है। लेकिन इस बातको कितने लोग समझते हैं ? वे कहते हैं अपनी कीमत अपनेही पास रखो, हमारी अमूल्य चिट्ठीका जवाब देना, उसीसे हमारा काम चल जायगा।

किसी समय मेरे बारेमें सभी कहते थे कि उसका शरीर बड़ी दया-मायाका है। और आज सभी बहनें, भाई, भांजियाँ, बन्धु-बांधव कह रहे हैं कि उसकी देहको दया-माया छू तक नहीं गई है। मैं कहता हूँ इसकी भी कीमत है। वे कहते हैं कि उस कीमतसे हमें वास्ता नहीं, तुम्हारी पहलेकी गैर कीमती वस्तु ही

हमें चाहिये। घरकी गृहिणी तकने उस स्वरमें स्वर मिलाया है। शायद उनका स्वर और सभी स्वरोंसे ऊँचा है। —दादा

बाजे शिवपुर, हावड़ा,
३ मई, १९२३

परम कल्याणीयासु।...कई दिन हुए मेरे ऊपर एक दुर्घटना घटी है। एलायंस बैंकमें यथासर्वस्व था, अचानक बैंकके फेल हो जानेसे लगता है सब कुछ डूबा। मकान खतम नहीं हुआ। तालाब खतम नहीं हुआ। सोचा था इस साल कुछ भी नहीं रख छोड़ूँगा, सब कुछ समाप्त करूँगा। पर पूँजीके समाप्त होनेसे सब कुछ स्थगित रहा। लेकिन यह भी तो कुछ कम विपत्ति नहीं है कि कितनोंहीने मेरे मार्फत अपना यथासर्वस्व मेरे ही बैंकमें इस विश्वासमें जमा रखा था कि मैं कभी उन्हें धोखा नहीं दूँगा। अब इन्हें पाई पाई चुकता कर देना होगा। बहुतेरे परिवारोंका भार मेरे ही कंधोंपर था। समझमें नहीं आता उनसे क्या कहूँगा। लेकिन यह बात निश्चित है कि मेरे बन्द कर देनेसे उनका चूल्हा नहीं जलेगा। भगवान अगर देते हैं, तो वह दूसरी बात है। बहुधा वह नहीं देते हैं, आदमीको भूखा अधभूखा मरना पड़ता है। सोच रहा हूँ, दो तीन दिन कहीं जाकर दिन रात परिश्रम कर देखूँ कि कमसे कम पाँच छ हजार रुपये कमा सकूँ। हो सकता है कुछ सँभाला जा सके, सम्बन्धियोंके परिवारोंको लेकर बड़ी चिन्ता है।......

तुम्हारा दादा

बाजे शिवपुर (हावड़ा)
१७ मई, १९२३

परम कल्याणीयासु। कुछ समय यहाँ नहीं था। तीनेक घंटे हुए बारिशालसे घर लौटने पर तुम्हारा पोस्ट-कार्ड मिला। इसी लिये ठीक समय पर चिट्ठीका जवाब न दे सका।......

हुगली जेलमें हमारे कवि काजी नजरुल इस्लाम अनशन करके मरणासन्न हैं। एक बजेकी गाड़ीसे जा रहा हूँ, देखूँ अगर मुलाकात करने दें और देने

पर मेरे अनुरोधसे अगर वह फिर खानेके लिये राजी हों। न होनेसे उनके लिये आशा नहीं देखता हूँ। वे एक सच्चे कवि हैं। रवि बाबूको छोड़ कर शायद इस वक्त इतना बड़ा कवि दूसरा नहीं। —दादा

सामताबेड़, पानित्रास पोस्ट
जिला हवड़ा, १३ कार्तिक, १३३३

परम कल्याणीयासु। लीला, तुम्हारी चिट्ठी मिली। इसी तरह बीच बीचमें अपना कुशल समाचार देना।......

मेरे मँझलेभाई प्रभास संन्यासी थे, शायद तुमने सुना होगा। वह कुछ दिन पहिले बर्मासे लौटकर मंगलवारकी रातको बीमार पड़े। निरन्तर कहने लगे—बारम्बार बीमारीसे यह शरीर शिथिल हो गया है, इसे छोड़ देनेकी ही आवश्यकता है। अगले दिन एक बजे घर और बिस्तर छोड़ कर खुद बाहर आए और मेरी छातीपर सिर रख कर शरीर त्याग कर दिया, दीदी, मैं बहू और प्रकाश भर थे... —दादा

११

[श्री हरिदास शास्त्रीको लिखित]

बाजे-शिवपुर, हावड़ा
२८-३-२५

तुम्हारी चिट्ठी पढ़ी। इस बार काशीकी इतने लोगोंकी भीड़में केवल तुम्ही आत्मीय-से लगे। पर तुम्हारे बारेमें कुछ भी नहीं जानता। इस पत्रको पढ़नेमें कुछ समय नष्ट अवश्य हुआ। पर समय क्या केवल प्रहर दण्ड पल विपल ही हैं, इसके सिवा और कुछ नहीं? उस दृष्टिसे तुम्हें इस लम्बे पत्रके लिखने और मेरे पढ़ने तथा सोचनेमें कुछ भी नष्ट नहीं हुआ, बल्कि संचय ही

हुआ।...नारियोंके लिये २२ से ३५ के बीचकी उम्र संकटजनक होती है। क्योंकि २२-२३ के बाद जब सचमुचका प्रेम जाग्रत होता है तब केवल आध्यात्मिक प्यारसे इसकी सारी क्षुधा नहीं मिटती। लेकिन यह तो हुआ एक पक्ष—शारीरिक पक्ष; किन्तु एक दूसरा पक्ष भी है—और वही चिरकालकी मीमांसाविहीन समस्या है। संसारमें साधारणतः ऐसा नहीं होता, पर जिन दो-चार व्यक्तियोंके भाग्यमें होता है उनके समान भाग्यवान् भी नहीं और अभागे भी नहीं। इनके दुर्भाग्यपर ही काव्य-जगतका सारा माधुर्य संचित हो उठा है...पर इतना बड़ा सत्य भी दूसरा नहीं है—

" सुख दुख दुटी भाई—
सुखेर लागिया जे करे पीरिति दुख जाय तार ठाँई ! "

...समाजमें जिसे गौरव प्रदान नहीं किया जा सकता, उसे केवल प्रेमके द्वारा ही सुखी नहीं किया जा सकता। मर्यादाहीन प्रेमका भार शिथिल होते ही दुर्विग्रह हो जाता है।...इसके अलावा केवल अपनी ही बात नहीं, भावी सन्तानकी बात सबसे बड़ी है। उनके कन्धोंपर दूसरेका बोझा लाद देनेकी क्षमता बहुत बड़े प्रेममें भी नहीं है।...एक बात।—यथार्थ प्यार करनेसे स्त्रियोंकी शक्ति और साहस पुरुषसे कहीं अधिक है। वे कुछ भी नहीं मानतीं। पुरुष जहाँ भयसे विह्वल हो जाते हैं, स्त्रियाँ वहाँ स्पष्ट बातें उच्च स्वरसे घोषणा करनेमें दुविधा नहीं करतीं।...समाजके अविचार अत्याचारका जो पहले प्रतिवाद करता है उसीको दुख भोगना पड़ता है।...

ई० १९२९

...कहा जाता है कि सच्चे प्यारके लिये संसारमें दुख भोगना पड़ता है। कोई न करे तो समाजके बेतुके अन्यायका प्रतिकार कैसे होगा? समाजके विरुद्ध जाना और धर्मके विरुद्ध जाना, एक वस्तु नहीं है। इस बातको ही लोग भूल जाते हैं। —(साहाना, बैसाख १३४६)

१२

[श्री अक्षयचन्द्र सरकारको लिखित]

प्रियवर, हमारे उपन्यासोंको नाटक बनाकर अभिनय करनेके सम्बन्धमें साधारण नियम इतना ही है कि वह नाटक छपाया नहीं जा सकेगा और कोई व्यापारी थियेटरवाला उससे अर्थोपार्जन नहीं कर सकेगा। यदि यह न हो, तो शौकसे अभिनय करने और उसके लिये टिकट बेचनेमें मेरी कोई मनाई नहीं है। मुझे 'दत्ता' उपन्यासका एक नाटक दूसरेसे मिला है। स्वयं ही कुछ कुछ रद्दोबदल करके 'विजया' नामसे उसे 'स्टार थियेटर' को देना सोचा है। मेरे उपन्यासोंमें दोष यह है कि नाटक बनानेके लिये उन्हें अनेक स्थानोंपर नये सिरेसे लिखना पड़ता है।

बाहरके लोगोंके लिये कठिनाई यह है कि वे नये सिरेसे तो कुछ दे नहीं सकते। केवल पुस्तकमें जो बातें हैं उन्हींको उलट फेर कर कुछ खड़ा करनेके लिये बाध्य होते हैं। इसीलिये प्रायः देखता हूँ, अच्छे नहीं होते।

आपका—शरत् बाबू (मासिक वसुमती, माघ १३४४)

१३

[श्री दिलीपकुमार रायको लिखित]

आषाढ़ १३३५

मण्टू,—···निबन्धोंका पढ़ा। लड़केके लिखे हुए हैं, इनके भले बुरेके विचार करनेका समय अब भी नहीं आया है।...कम उम्रमें कहानी लिखना अच्छा है, कविता लिखना और भी अच्छा है, लेकिन समालोचना लिखने बैठना अन्याय है!...तुम इतनी जल्दी लिखनेके लिये उसे मना करना। लिखनेमें शीघ्रता मुंशीकी योग्यता है, लेखककी नहीं।...लड़कीकी रचनाएँ पढ़कर लगता है बहुत बुद्धिमती है। किन्तु जीवनमें उम्रके साथ-साथ जो वस्तु मिलती है उसका नाम है अनुभव। केवल पुस्तकें पढ़ कर इसे नहीं पाया जा सकता। और न

पाने तक इसका मूल्य नहीं मालूम होता। लेकिन इस बातको भी याद रखना चाहिये कि अनुभव दूरदर्शिता आदि केवल शक्ति प्रदान ही नहीं करते शक्तिका हरण भी करते हैं। इसीलिये कम उम्र रहते ही कुछ कामोंको समाप्त कर देना चाहिये, जैसे कहानी लिखना। मैंने बहुधा देखा है कि कम उम्रमें जो कुछ लिखा जाता है उसके अधिकांशको अधिक उम्र होनेपर नहीं लिखा जा सकता। तब उम्रके अनुयायी गांभीर्य और संकोच बाधा देते हैं। मनुष्यमें केवल लेखक ही नहीं रहता; आलोचक भी रहता है। उम्रके साथ साथ आलोचक बढ़ता जाता है। इसीलिये अधिक उम्रमें जब लेखक लिखने बैठता है, तब आलोचक पग पगपर उसका हाथ पकड़ लेता है। वह रचना ज्ञान विद्या-बुद्धिकी दृष्टिसे कितनी भी बड़ी क्यों न हो जाय, रसकी दृष्टिसे उसमें उसी प्रकार त्रुटि होती है। इसलिये मेरा विश्वास है कि जवानीको पार कर जो व्यक्ति रस-सृजनका आयोजन करता है, वह भूल करता है। मनुष्यकी एक उम्र है जिसके बाद काव्य कहो या उपन्यास कहो लिखना उचित नहीं। अवसर ग्रहण करना ही कर्तव्य है। बुढ़ापा है, मनुष्यको दुःख देनेका समय तब मनुष्यको आनन्द देनेका अभिनय करना वृथा है।—(स्वदेशी बाज़ार, शरत्-संख्या, १३ आश्विन, १३३५)

---

२२ भाद्रपद, १३३६

मण्टू,......तुमने पूजनीय रविबाबूका एक कथन उद्धृत किया है कि "सर्वसाधारणको हम अश्रद्धा करते हैं, इसीलिये रसकी निमन्त्रण-सभामें बाहरके आँगनमें उनके लिये चूड़ा-दहीकी व्यवस्था करते हैं, और 'सन्देशों' को बचा रखते हैं, उनके लिये जिन्हें कि बड़े आदमी कहते हैं,।" बात सुननेमें अच्छी है और जिन्होंने लिखा है उनकी मानसिक उदारता और निरपेक्षता भी यथार्थमें प्रकट होती है। किन्तु वास्तवमें इतना बड़ा गलत कथन दूसरा नहीं। शिक्षा, सभ्यता और संस्कृतिके लिये 'सन्देश' ही चाहिये मण्टू! सचमुचके शिक्षित सुकुमार हृदय मनुष्यको अगर चूड़ा-लाई खिलाते हो, तो पेटकी पीड़ासे वह परेशान नहीं होगा? और

सर्वसाधारण लोग ? कमसे कम आजकल रातोंरात उन्हें ‘ सन्देश ’ कैसे दोगे, बतलाओ तो ! और आजकल वे चूड़ा-लाईपर ही बढ़ते हैं, इस बातको अस्वीकार कैसे करोगे ? एक उदाहरण लो । थोड़े-से सर्वसाधारण पैसे-वालोंने तुम जैसे दो चार व्यक्तियोंका प्रश्रय पाकर आजकल रेलगाड़ीके तीसरे दर्जेको छोड़ अचानक दूसरे दर्जेमें चढ़ना शुरू किया है । अच्छा, किसी डब्बेमें इनमेंके दो तीन जनोंको तीन-चार घण्टे बिठा रखनेपर देखा है क्या तमाशा होता है ? तब किसकी हिम्मत और प्रवृत्ति होती है कि उस कमरेका व्यवहार करे ?...एक टोकरी मिट्टीसे लेकर, चनेकी घुँघनी, पकौड़े, खंखार...तीर्थ-सलिल...उस दृश्यको जिसने देखा है, वह क्या कभी भूल सकता है ? बात यह है कि अन्दर सोनेके घरमें बैठकर सन्देश खानेकी भी एक योग्यता है, उसे अर्जन करना होता है; इस बातको संसारके सभी देशोंके बड़े बड़े चिन्ताशील व्यक्तियोंने कहा है । तुम भी स्वीकार किया करते हो । नहीं तो अन्दरका दरवाजा खुला पाकर ‘ बाहरी आँगन ’ के लोग हल्ला मचाकर कहीं घुस पड़े, तो हम क्या जिन्दा रह सकेंगे ? अतएव इस तरहकी खतरनाक अति उदार बात फिर कभी नहीं कहना ।...(देखिये ‘ अनामी ’)

---

४ फाल्गुन, १३३७

मण्टू, हाँ, अपनी नई पत्रिका ‘ ओरियण्ट ’ मुझे भेजना । तुम्हारा लेख प्रकाशित होगा, उसे पढ़नेके लिये मैं सचमुच ही उत्सुक हूँ । तुमने लिखा है साहित्यके मामलेमें तुम मेरे ऋणी हो, कमसे कम इसके संयमके बारेमें मुझसे बहुत कुछ सीखा है । ऋणकी बात मुझे याद नहीं, लेकिन इस बातको मैंने तुम्हें पहले भी कहा है कि केवल लिखना ही कठिन नहीं है, न लिखनेकी शक्ति भी कुछ कम कठिन नहीं है । अर्थात् भीतरके उच्छ्वास और आवेगकी लहर कहीं व्यर्थ ही न बहा ले जाय, हम स्वयं ही जिसमें पाठकोंको सर्वांशमें आच्छन्न न कर सकें, अलिखित अंशको जिसमें उन्हें भी अपने भाव रुचि और बुद्धिसे पूरा करनेका मौका मिले । तुम्हारी रचना उन्हें इशारा देगी, आभास देगी, लेकिन उनका बोझ नहीं ढोएगी । श्री...ने अपनी

किसी एक पुस्तकमें, मरे लड़केके माँ-बापकी ओरसे पन्नेपर पन्ने इतने आँसू बहाए कि पाठक केवल देखते ही रह गए, रोनेकी फ़ुरसत ही उन्हें नहीं मिली। वस्तुतः रचनाका असंयम साहित्यकी मर्यादाको नष्ट कर देता है। हास्यरसिक...बाबू सुन्दर लिखते हैं। लेकिन सुन्दर नहीं लिखना नहीं जानते। वह सचमुच ही बड़े लेखक हैं, लेकिन नहीं लिखनेके इशारेको ठीक नहीं समझ पाये, यह बात क्या उनकी पुस्तक पढ़नेसे तुम्हें नहीं दिखाई पड़ती ? और एक प्रकारका असंयम दिखाई पड़ता है...की रचनामें। लड़का लिखता है अच्छा। विलायत भी जा आया है। लेकिन इस जानेको क्षणभर-के लिये भी नहीं भूल पाता। विलायतके मामलोंको लेकर उसकी रचनामें एक ऐसी अरुचिकर गद्‌गद् भक्ति प्रकट होती है कि पाठकका मन उत्पीड़ित हो जाता है। मेरे मामाकी बात याद है। एक बार वैष्णव मेलेके उपलक्षमें हम श्रीधाम खेतुरी गए थे। मामाका विश्वास था कि खेतुरीका प्रसाद खानेसे अम्लशूल ठीक हो जाता है। स्टीमरसे गंगाके किनारे उतरते ही मामा 'ऐं!' कर उठे। देखा, भयार्त चेहरेके साथ एक पैर उठाये हुए हैं।

क्या हुआ ?

बड़े ताजे श्रीगूमें बूड़ गया हूँ।

उन्हें डर था कि भक्तिहीनता प्रकट होनेपर कहीं अम्लशूल अच्छा न हुआ ! तुम्हारे 'दोला' का मामला भी विलायतका है। उस दिन कई अध्याय पढ़े। उसमें व्यर्थकी भक्ति-विह्वलता, अकारण असंयत विवरणका घटाटोप नहीं है। लगता है यह भी तो विलायत गया है, जानता भी बहुत कुछ है, लेकिन बतलानेके लिये बेचैनी नहीं है।...अगर कोई चुनौती देकर कहता है कि रचनामें बेचैनी कहाँ है दिखाओ, तो शायद हमें उत्तरमें यही कहना होगा कि इन चीजोंको इस तरह नहीं दिखाया जा सकता, रसिक पाठकोंका मन अपने आप अनुभव करता है। श्रीमति...देवीके उपन्यास-में देखोगे वेद-वेदान्त, उपनिषत्-पुराण, कालिदास, भवभूति सभी घुसनेके लिये रेलमपेल मचा रहे हैं। हरेक पंक्तिमें ग्रन्थकारका यह मनोभाव पकड़में आता है कि तुम सब लोग देखो, मैं कितनी विदुषी हूँ, कितनी पढ़ी हूँ, कितना जानती हूँ। इस अतिरेकको किसी भी तरह प्रश्रयन मिलना चाहिए।

लेकिन बड़े भाव, बड़े तत्त्व, बड़ा आइडिया, बड़ी व्यंजना, इन्हें लेकर चलना होगा जीवनमें भी और साहित्यमें भी। पानी बरसता है, पत्ता हिलता है, लाल फूल और काला जल, देवरानी-जेठानीमें झगड़ा, बहू-बहूमें मनो-मालिन्य —या—के कला-निपुण घरमें कितनी आलमारियाँ कितने सोफे, दीपमें कितनी बत्तियाँ और अलगनीपर कितनी और किस किनारकी चुनी हुई साड़ियाँ, इन सबके दिन बीत गए, प्रयोजन भी समाप्त हो गया। यह केवल लिखनेके बहाने साहित्यको ठगना है। तुम यह सब नहीं करते हो, इसे मैंने लक्ष्य किया है। इससे और दूसरे बहुतसे कारणोंसे तुम्हारी रचनामें आजकल मुझे बहुत आशा होती है, मण्टू। और तुम्हारी यह बात बहुत सच है कि सबसे जीवित रचना वह है जिसे पढ़नेसे प्रतीत हो कि लेखकने अपने अन्तरसे सब कुछ फूलकी तरह प्रस्फुटित किया है। तुमहीने एक दिन मुझसे कहा था कि बंगालमें हमारी सारी पुस्तकोंके नायक-नायिकाको लोग समझते हैं कि लेखकका निजी जीवन है, निजी कहानी है। इसीलिये तो सज्जन समाजमें मैं अपांक्तेय हूँ। (अनामी)

---

४ कार्तिक, १३३८

मण्टू—देशोद्धार करनेके लिये सुभाषके दलने मुझे जबर्दस्ती कुमिल्ला चलान कर दिया था। रास्तेमें एक दलने 'शेम' 'शेम' कहा। खिड़कीके सूराखसे कोयलेका चूरा सिर और बदन पर बिखेरकर प्रीति-ज्ञापन किया और एक दूसरे दलने बारह घोड़ेकी गाड़ीपर चढ़ा डेढ़ मील लम्बा जुलूस निकालकर बता दिया कि कोयलेका चूरा कुछ भी नहीं है,—वह माया है। जो कुछ भी हो रूपनारायणके तीरपर वापस आ गया हूँ। श्री अरविन्दके 'मुक्त मनुष्य' में व्यक्तिगत आशा नही रहती—The liberated man has no personal hopes के सत्य की उपलब्धि करनेमें मुझे अब देर नहीं। जय हो कोयलाके चूरेकी ! जय हो बारह घोड़ेकी गाड़ीकी ! शेष प्रश्न पढ़ कर खुशी हुई है यह जान कर आनन्दित हुआ। 'खूब करूँगा, गरजकर गन्दी बातें ही लिखूँगा' इस तरहका मनोभाव ही अति आधुनिक साहित्यका केन्द्रीय आधार नहीं है इसीका नमूना दिया है। (अनामी)

सामताबेड़, पो० पानित्रास,
जिला हावड़ा
२२ भाद्र, १३३३

मण्टूराम, तुम्हारी पुस्तक और छोटी चिट्ठी मिली। कल रात-दिनमें पुस्तक-को पढ़कर समाप्त किया। बहुत अच्छी लगी। लेकिन दो एक त्रुटियाँ भी हैं। भारतके बड़े बड़े गाने-बजानेवालोंमें अपना नाम न देखकर कुछ खिन्न हुआ। लेकिन निश्चित रूपसे जानता हूँ, यह गलती तुम्हारी इच्छाकृत नहीं है। असावधानीके कारण ही हो गई है और भविष्यमें इसे तुम सुधार दोगे, इसके बारेमें मुझे लेशमात्र संदेह नहीं है। सुधार देना, भूलना मत। रायबहादुर मजूमदार महाशयके 'राङ्गा जबा मूटो मूटो मूटो' का उल्लेख कहाँ है? वह भी चाहिये। क्यों कि मेरा विश्वास है कि वह खिन्न हुए हैं। यह तो हुई पुस्तककी त्रुटिकी बातें। एक मतभेदका विषय भी है। *

तुम्हारे कन्सर्टमें नहीं जा सका, क्यों कि शरीर जरा अस्वस्थ था। दूसरा कारण यह है कि मेदिनीपुरमें...प्रतिवर्ष कहीं न कहीं बाढ़ आयगी ही। आना अनिवार्य है। सरकारने कोई प्रतिकार नहीं किया और न करेगी। यह बाढ़ देशपर एक स्थायी टेक्स बन गई है। इस प्रकारसे हर साल बाढ़-पीड़ितोंकी सहायता करनेमें कौन-सी सार्थकता है? सरकारको एक बात जोरसे नहीं कहेंगे, एक फावड़ा मिट्टी खोदकर, रेलकी सड़क काटकर पानी नहीं निकाल देंगे,—कहीं साहब पकड़कर जेल न भेज दे! वे जानते हैं कि कलकत्तेके भद्र लोगोंका यह महान् कर्तव्य है कि उन्हें खाना कपड़ा दें। क्योंकि उनके घरमें पानी आ घुसा है। इसके अलावा पद्माके दियारेमें मो...लोग दलबद्ध होकर क्यों बसते हैं, जानते हो? केवल इसीलिये कि वर्षामें उनके घर-द्वार बह जाने पर पश्चिम बंगके भद्र लोग उन्हें रुपया देंगे। केवल परेशान करनेके लिये वह ऐसी भयंकर जगहमें जा बसे हैं। इसके अलावा और कोई उद्देश्य नहीं है। मैं निश्चित रूपसे जानता हूँ कि इस विषयमें तुम्हारे अन्दर

* इसके आगेका अंश पृ० ७७-७८ में छप चुका है, उसे इस स्थानपर पढ़ना चाहिए।

किसी प्रकारके मतभेदकी आशंका नहीं। क्योंकि तुम बुद्धिमान् हो। जो सच्ची बात है उसे समझोगे ही।

अखबारमें देखा है कि तुम विलायत जा रहे हो। आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हारी यात्रा निर्विघ्न और उद्देश्य सफल हो। मेरा उम्र हो गई है। लौटने पर अगर मुलाकात न हो, तो इस बातको याद रखना कि मैं तुम्हारी चिरदिन शुभ-कामना करता रहा। आशा है तुम कुशल हो।

—श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

पुनश्च—अगले ३१ भाद्रको ५० का हो जाऊँगा। पहली कार्तिकको तुम लोगोंसे मिलनेके लिये कलकत्ते जाऊँगा।

सामताबेड़, पानित्रास पोस्ट (हावड़ा)
६ फाल्गुन, १३३२

परम कल्याणीयेषु। मंटू, तुम्हारी चिट्ठी और टिकट दोनों मिल गये। कन्सर्टमें जानेके लिये समय नहीं था। क्योंकि जब तुम्हारी चिट्ठी मिली, तब जाया नहीं जा सकता था। बृहस्पतिवारको तुम्हारे विदाईके उत्सवमें सम्मिलित होनेकी बड़ी इच्छा थी, लेकिन इधर बंगाल नागपुर रेलवेमें हड़ताल चल रही है। गाड़ियोंका एक तरहसे पता ही नहीं है। जो भी हैं, सात आठ घंटेसे कममें हावड़ा नहीं पहुँचतीं। और न भी गया तो क्या हुआ? आँखोंसे देखने और कानोंसे सुननेकी ऐसी कौन-सी जरूरत है? यहींसे हृदयसे आशीर्वाद देता हूँ। तुम्हारा पथ निर्विघ्न हो और तुम्हारी यात्रा सार्थक हो।

मैं बहुत अच्छा नहीं हूँ। शरीर निरन्तर क्षीण और शिथिल होता जा रहा है। तुम्हारी दोनों पुस्तकें बड़े ध्यानसे पढ़ीं। 'मनेर परश'का अन्तिम हिस्सा बहुत ही मधुर है। हृदयकी सहानुभूतिसे जिस संसारको देखना सीखा है उसके बारेमें लिखनेके अन्दर कितनी व्यथा, कितना आनन्द संचित हो जाता है, उसे इस पुस्तकके पढ़नेसे जाना जा सकता है।

तुम सदा ही व्यस्त रहते हो। तुम्हारे पास समयकी कमी रहती है। लेकिन इस बार लौटकर तुम्हें लिखनेकी ओर जरा ध्यान देना होगा। लेखन-कार्यमें

जो शिल्प-कौशल और कला है उसे जरा और यत्नसे तुम्हें आयत्त करना होगा। केवल लिखना ही नहीं भाई, न-लिखनेकी विद्याको भी सीखना चाहिये। तब उच्छ्वसित हृदय जिस बातको शतमुखसे कहना चाहता है वही शान्त, संयत होकर जरासे गंभीर इशारेसे ही सम्पूर्ण हो जाता है। बीच बीचमें यह चेतना तुम्हें आई है और बीचबीचमें तुम आत्म-विस्मृत हो गये हो। अर्थात् पाठकोंका समूह इतना आलसी है कि शतयोजनकी सीढ़ी पार करके स्वर्ग भी नहीं जाना चाहता, अगर उसे जरा-सी कलाबाजी करके नरक पहुँच जानेका रास्ता मिल जाय। इस बातको याद रखना रचनाके लिये सबसे बड़ा कौशल है।

मेरा सस्नेह आशीर्वाद लेना।

—तुम्हारा श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

सामताबेड़, पानित्रास पोस्ट,
जिला हावड़ा
१३ फाल्गुन १३३३

परम कल्याणवरेषु। मण्टू, तुम्हारी चिट्ठी पाकर कितनी खुशी हुई यह तुम्हें भी बतलाना कठिन है। तुम मुझे श्रद्धा करते हो, प्यार करते हो, इसे भी अगर नहीं समझूँगा तो इस संसारमें और क्या समझूँगा?

तुम्हारे विदाके अभिनन्दनमें जो लोग सम्मिलित हुए थे उनके मुँहसे क्या क्या हुआ सब सुना है। तुम विदेश जा रहे हो मगर जरा जल्दी लौटना। तुम निकट नहीं हो, यह याद आते ही मनको कष्ट पहुँचता है।

'मनेर परश'का अंतिम अर्थात् तीसरा हिस्सा मुझे कितना अच्छा लगा था यह नहीं बतला सकता। सच्ची व्यथा और दुःखके अन्दरसे सारे संसारके लोग एक दूसरेके कितने अपने हैं, यह न जाने कितने सहज भावसे तुम्हारी पुस्तकके अंतमें निखर उठा है। इसीलिए मुझे निरन्तर लगता था कि तुम शायद किसीके यथार्थ जीवनके दुःखकी कहानी लिपिबद्ध कर गए हो। लेकिन

इसे लिपिबद्ध करनेके कौशलको तुम्हें जरा और यत्नसे सीखना होगा। तु
पिताको नहीं जानता था, परन्तु उनके अन्तरंग मित्रोंसे सुनता हूँ कि उनमें मनुष्यकी वेदना समझनेकी अनुभूति बड़ी उच्च कोटिकी थी। शायद यही तुम्हें उत्तराधिकारमें मिली है। तुम्हें इस वस्तुका हृदयमें दिन-रात लालन करके पूर्ण मनुष्य बनाना होगा। तभी तो ठीक होगा।

अच्छी बात है, मेरी चिट्ठीमेंसे जितना चाहो प्रकाशित कर सकते हो। अनुमति देता हूँ।

तुम मेरे अतिशय स्नेहके हो। आजसे नहीं, बहुत दिनोंसे, इष्ट-मित्रोंके साथ मेरे घर आकर शोरगुल मचाकर जब पूड़ी खा जाते थे तबसे।

तुम्हें समग्र हृदयसे आशीर्वाद देता हूँ कि इस जीवनमें सफल बनो, नीरोग बनो, दीर्घजीवी बनो। —आशीर्वादक, शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

सामताबेड़, पानित्रास पोस्ट
भाद्र, १३३५

परम कल्याणीयेषु। मण्टू, बहुत दिनोंसे तुम्हारी चिट्ठीका जवाब नहीं दे सका। तुम बहुत क्रुद्ध हुए होगे। उस दिन तुम्हारे थियेटर रोडवाले घरपर गया था। न तो तुम थे और न तुम्हारे मामा तक ही। साहबका इन्तजार करना रीतिविरुद्ध है कि नहीं, यह निश्चय नहीं कर सका। मेरे साथ जो सज्जन थे वे कुशल व्यक्ति हैं। दलालीके कामके सिलसिलेमें वह साहबोंके यहाँ जाया करते हैं। उन्होंने कहा कि कार्ड रख जानेका ही कायदा है—मुँह बाकर बैठे रहनेसे ये क्रुद्ध होते हैं। लेकिन कार्ड न रहनेके कारण हम चुपचाप लौट आए।

कल भी बहुत राततक तुम्हारी 'दो धारा' के कितने ही स्थलोंको फिर पढ़ गया। यथार्थमें पुस्तक बहुत अच्छी है। अवहेलना करके जैसे-तैसे पढ़ जानेकी वस्तु नहीं है, मन लगाकर पढ़नेके योग्य है। लेकिन जानते तो हो, आजकल प्रशंसा-पत्रका मूल्य नहीं है। क्योंकि जिनके लिए बातकी कीमत है वही इसकी अमर्यादा करते हैं। इसीलिए अचानक बात नहीं करता। लेकिन जो लोग

मेरी बातपर विश्वास करते हैं उन सभीसे कहता हूँ कि मण्टूकी इस पुस्तकको श्रद्धाके साथ शुरूसे आखिर तक पढ़ देखो। मेरा अपना तो पेशा ही यह है, फिर भी इसमें ऐसी बहुत-सी बातें हैं जिनके बारेमें मैंने भी इसके पहिले सोचकर नहीं देखा है।

'भारतवर्ष' (जेठ, १३३५) में तुम्हारी 'चाकर' कहानी पढ़ देखी। कहानीके हिसाबसे यह उतनी अच्छी नहीं बनी है, लेकिन देखा है कि तुम्हारे अन्दर एक चीजका सुन्दर विकास हुआ है और वह है डायलाग। कहानी लिखनेका कौशल या पद्धति और डायलागकी धारा दोनों—तुम्हारे अन्दर जिस दिन एक हो जायँगी उस दिन तुम सचमुच ही बड़े साहित्यिक हो जाओगे। एक बात मत भूलना मण्टू। रचनामें लिखते जाना जितना कठिन है, उतना ही उसमें न लिखकर रुक जाना भी कठिन है। लेकिन यह बात किसीको सिखाई नहीं जा सकती, अपने आप ही सीखनी पड़ती है। मैं निश्चित रूपसे जानता हूँ कि इसे सीखनेमें तुम्हें देर नहीं लगेगी। आज जो लोग तुम्हारी खिल्ली उड़ाते हैं, वहीं एक दिन खुले आम न हो, मन ही मन इस सत्यको स्वीकार करेंगे। मेरे जानेके दिन निकट आ रहे हैं, लेकिन उतने दिनोंके बाद भी अगर मुझे भूल नहीं गए तो मेरी यह बात तुम्हें याद आयगी।

'शरच्चन्द्र औ गाल्सवर्दी' निबन्ध पढ़ा। गाल्सवर्दीका केवल नाम ही सुना है, उनकी कोई पुस्तक नहीं पढ़ी। अतएव उनमें और मुझमें कहाँ समानता है और कहाँ नही है, कुछ भी नहीं जानता। निबन्धमें मेरी प्रशंसा है और गाल्सवर्दीके ढेरके ढेर उद्धरण हैं। इससे मैं कुछ भी नहीं समझ सका। केवल यही समझा कि आ...ने उनकी पुस्तकें पढ़ी हैं और गाल्सवर्दी महाशय कोई भी क्यों न हों बहुत-सी अच्छी-अच्छी बातें कह गए हैं और उन्हें पढ़नेसे ज्ञान उत्पन्न होता है।

लड़की जीवनमें सुखी नहीं है, इस बातको सुनकर क्लेश होता है। लेकिन इस समाजमें नारी-जन्मका ऐसा अभिशाप है कि इससे छुटकारेका रास्ता ही नहीं।

उस दिन बरट्रण्ड रसलकी 'ऑन आउट लाइन आफ फिलासफी' पुस्तक पढ़ी। पुस्तक कठिन है। गणित आदिका विशेष ज्ञान न होनेसे सब बातें अच्छी

तरह समझी नहीं जा सकती हैं, मैं भी नहीं समझ सका। लेकिन मुग्ध हो जाना पड़ता है इस आदमीकी सरलताको देखकर और अनभिज्ञ आदमीको सरलतासे समझा देनेकी चेष्टाको देख कर। अनजान लोगोंके प्रति उसमें अशेष करुणा है।—अहो! ये बेचारे भी कुछ बातें समझें—वास्तविकमें यही इच्छा मानो उसकी प्रत्येक पंक्तिसे टपकती है। सोचता हूँ, जो सचमुच ही पंडित हैं, ज्ञानी हैं, उनकी रचना और उछल-कूद मचानेवालोंकी रचनामें कितना अंतर होता है, उनकी और एच० जी० वेल्स इन दोनोंकी रचनाओंको आमने सामने रखकर देखनेसे इसका पता चलता है। ये निरन्तर चेष्टा करते हैं बड़ी-बड़ी बातोंको चालाकी और फक्कड़पन करके समाप्त कर देनेकी। रसलकी 'आन एडूकेशन' खरीद लाया हूँ। कल पढ़नेकी सोच रहा हूँ। अगले साल अगर विलायत गया तो इनसे एक बार मिल आनेके लिए ही जाऊँगा।

उस दिन कई लड़के आए थे। तुम्हारे 'मनेर परश'की बड़ी प्रशंसा कर रहे थे। उन्होंने कहा कि मैंने इस पुस्तकके बारेमें जो कुछ कहा है वह यथार्थ ही सत्य है। सुनकर बड़ी खुशी हुई थी।

मामा कैसे हैं? इस समय तुम कहाँ हो, ठीक-ठीक न जाननेके कारण तुम्हारे मामाके पतेपर ही चिट्ठी लिख रहा हूँ। आशा है मिल जायगी। मेरा स्नेहाशीर्वाद लेना।—शरत्

आटोग्राफकी कापी खुद किसी दिन जाकर दे आऊँगा। खोया नहीं है,—है। मालकिनसे कह देना। *

सामताबेड़, पानित्रास (हावड़ा)
१३-६-१९२५

मण्टू, तुम्हारे नामसे तो वारण्ट नहीं था जो तुम साधु बनने गये। बस, अब आगे नहीं। इस पत्रको पाते ही चले आना। न हो तो कुछ दिनोंके बाद फिर चले जाना। इससे कोई क्षति नहीं होगी। मैं अनुभवी व्यक्ति हूँ,

---

* पृष्ठ ७६-७७-७८ पर छपे हुए पैराग्राफ इस चिट्ठीके ही अंश हैं। उन्हें यहाँ दुबारा नहीं दिया। उन्हें तीसरे चौथे पैराग्राफके बाद पढ़ना चाहिए।

मेरी बात सुनो। तुम्हारी उम्रमें मैं चार-चार बार संन्यासी बना था। उस ओर शायद मक्खियाँ और मच्छर कम हैं, नहीं तो हिन्दुस्तानियोंकी पीठके चमड़ेके सिवा उनके दंशनको सहना किसके बूतेकी बात है! भैया, यह बंगालीका पेशा नहीं है, बात सुनो, चले आओ। तुम्हारे आनेपर इस बार बरसातके बाद एक साथ हम उत्तर और दक्षिण भारत घूमने चलेंगे। तुम्हारे साथ न होनेपर खातिरदारी नहीं मिलेगी, खाने-पीनेका भी उतना सुभीता नहीं रहेगा। कब आ रहे हो, पत्र पाते ही लिखना। मैं स्टेशनपर जाऊँगा।

एक बात और। सुना है बारीन किसी भी पेड़का पत्ता तुम्हारे नाकपर रगड़कर किसी भी फूलकी सुगन्ध सुँघा सकता है। उपेन वन्द्योपाध्याय कहता है कि उसने इस चीजको कर्त्ता (श्री अरविन्द घोष) से हथिया लिया है। आते समय तुम इसे सीख लेना। वह एकाएक नहीं मानेगा, मगर तुम छोड़ना मत। कुछ दिनों तक उसकी अण्डमनकी वंशीकी खूब तारीफ करते रहना और पुस्तकको हमेशा साथ लेकर घूमना और इस पुस्तकको इतने दिनों तक नहीं पढ़ा, यह कहकर बीच-बीचमें उसके सामने अफसोस जाहिर करना। बहुत सम्भव है कि इतनेसे ही 'विभूति' को हथिया ले सकोगे। उत्तर-भारत घूमते समय वह खास काममें आयेगी।

सुना है अनिलवरण धूलको चीनी बना सकता है, यद्यपि ज्यादा देरतक वह नहीं टिकती, मगर ५–७ घण्टे तक देखने और खानेमें चीनी ही लगती है। इसे अवश्य ही सीख आनेकी चेष्टा करना। अचानक रुपया पैसा खतम हो जानेपर परदेशमें मुसाफिरीमें—समझ गये न? इसे सीखना ही होगा। अनिलवरण सरल और भला आदमी है। अगर सिखानेमें आपत्ति करे तो भूतों और चुड़ैलोंकी खूब कहानियाँ कहना। शपथ खाकर कहना कि तुमने चुड़ैल अपनी आँखों देखी है। फिर आगे चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी— अनायास ही 'कौशल'को हथिया लोगे। और अगर इन दोनोंको सचमुच ही सीख लेते हो, तो वहाँ कष्ट उठाकर रहनेकी कौन-सी जरूरत है?

बहुत दिनोंसे तुम्हें नहीं देखा। देखनेकी बड़ी इच्छा होती है, गाना सुननेकी साध होती है। कब आओगे, लिखना। मेरा स्नेहाशीर्वाद लेना।

—श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

पुनश्च—'विभूतियों' को लाभ ही होगा। समय कुसमय बड़े काम आती हैं। जो भी हो, शीघ्र चले आओ। संन्यासी होना बहुत खराब है मण्टू। मेरी बातपर विश्वास करो। आजकलके जमानेमें इसमें कुछ भी मजा नहीं है। कब आ रहे हो, ठीक-ठीक लिखना।

सामताबेड़, पानित्रास पो०
जिला हावड़ा
४ फाल्गुन, १३३७

परम कल्याणीयेषु। मण्टू, तुम्हारी चिट्ठी मिली। शुरूमें ही लिखा है—यह भलीभाँति समझमें आ रहा है कि आप मेरे ऊपर धीरे-धीरे अप्रसन्न हो रहे हैं। अप्रसन्नताका अर्थ अगर विरक्ति है तो उत्तरमें कहूँगा कि निश्चय ही नहीं। वस्तुतः तुम्हें मैं बहुत प्यार करता हूँ। इसीलिए जब लगता है कि मेरे दिन समाप्त होते जा रहे हैं, इस जीवनमें तुम्हें फिर नहीं देख पाऊँगा, तब इतना कष्ट होता है कि उसे तुम्हारे साधना-भजन करनेवालोंके दलमें कोई नहीं समझेगा। अतएव इन बातोंकी आवश्यकता नहीं। जीवनमें जिन अनेक दुःखोंको चुपचाप सह गया, उनमेंसे यह भी एक है।*

तुम्हारी रचनाओंसे मुझे आजकल बड़ी आशाएँ और बल मिलता है, परन्तु मनमें बेदना-बोध भी करता हूँ कि इसे तुमने छोड़ दिया। आश्रममें रहकर इस चीजको कभी नहीं किया जा सकता। जीवनमें जिसने प्यार नहीं किया, कलंक मोल नहीं लिया, दुःखका बोझ नहीं ढोया, सच्ची अनुभूतिका अनुभव आहरण नहीं किया, उसकी दूसरेके मुँहसे लिये गये स्वाद-सी कल्पना सच्चे साहित्यकी सामग्री कब तक बनेगी? नाक-दबाये-प्राणायामके योगबलसे और कुछ भी क्यों न हो यह वस्तु नहीं हो सकती। जिसका अपना ही जीवन नीरस है, बंगालकी बाल-विधवाकी तरह पवित्र है, वह प्रथम जीवनके आवेगसे जितना भी करे, दो दिनमें सब कुछ मरु-भूमिकी तरह शुष्क श्रीहीन हो उठेगा। भय होता है, धीरे-धीरे शायद तुम्हारी रचनामें भी

---

* इसके आगेके अंश पृष्ठ ७८-८० में छप चुके हैं।

असंगति दिखाई पड़ेगी। सबसे जिन्दा रचना वही है जिसे पढ़नेसे लगे कि ग्रंथकार अपने अन्तरसे सब कुछको बाहर फूलकी भाँति खिला रहा है। देखा नहीं है मेरी सारी पुस्तकोंके नायक-नायिकाओंको लोग समझते हैं कि शायद यही ग्रंथकारका अपना जीवन है, अपनी बात है। इसी लिए सज्जन-समाजमें मैं अपांक्तेय हूँ। लोगोंकी जबानी न जाने कितनी जनश्रुतियाँ चल पड़ी हैं। अपनी बात रहने दूँ। तुम्हारी बात एक दिन सोची थी कि मण्टू बैरिस्टर बनके नहीं आया, यह अच्छा ही हुआ। उसने ढेरों रुपए नहीं कमाए, मोटरकार पर नहीं चढ़ा, हाई-सर्किलका स्तम्भ नहीं बना, तो क्या हुआ! इसकी कमी नहीं। जितना है उतनेसे चल जायगा,—केवल साहित्य और संगीतके जरिए मण्टू देशको बहुत कुछ दे जायगा। वह निरानन्द देशके लिए आनन्दका भोज है—यही हमारे लिए बहुत है। मैं और एक बात सोचा करता था। मण्टू देश-देशमें घूमा करता है। वह अनेक जातियों, अनेक समाजों, अनेक लोगोंके साथ बंगालका एक स्नेह और श्रद्धाका बंधन प्रस्तुत कर रहा है। उसे सभी पहचानते हैं, सभी प्यार करते हैं। मण्टूके साथ जानेसे कहीं भी आदरकी कमी नहीं होगी। लेकिन उस आशा उस आनन्दपर पानी पड़ गया। जिसके शरीरकी, मनके आनन्दकी, सामजिकताकी, स्वतन्त्रताकी सीमा नहीं थी उसने आज दासताका ऐसा पट्टा लिख दिया कि एक पैर बढ़ानेके लिए भी उसे अनुमति चाहिए! यही है उसकी मुक्तिकी साधना! देश गया, रह गया उसका काल्पनिक स्वार्थ और वही उसके लिए बड़ा हो गया। मैंने भी बहुत पढ़ा है, बहुत देखा है, बहुत कुछ किया है—इस बातको मैं भी तो नहीं भूल पाता। इसी लिए जो कोई कुछ कहता है उसे मान लेनेमें द्विधा होती है। लेकिन इस बातको लेकर बहस निष्फल है। मेरे बचपनकी एक बात सदा याद रहेगी। मामाके संग सर गुरुदासके घर दशहरेका न्योता खाने गया था। जाकर देखा कि गुरुदासके प्रचण्ड क्रोधके कारण उनके सिरके बड़े बड़े केशर फूल उठे हैं। सुननेमें आया कि एक विद्यार्थीने कह दिया था कि गंगास्नान करनेसे पाप धुलता है, इस बातमें वह विश्वास नहीं करता। गुरुदास क्षिप्त होकर चिल्ला-चिल्लाकर कह रहे थे कि स्नान करनेकी भी आवश्यकता नहीं, केवल तीरपर खड़े होकर गंगा-गंगा कहकर दर्शन करनेसे न केवल वही बल्कि उसकी सात पुश्तें पापमुक्त होकर अक्षय स्वर्गमें निवास

करती हैं, इसमें संदेहके लिए गुंजाइश कहाँ है? कौन पातकी इस शास्त्र-वाक्यको अस्वीकार कर सकता है? कहते-कहते गुस्सेमें वह मकानके अन्दर चले गए। याद है कि उस बचपनमें ही मैंने मन ही मन कहा था कि यही गुरुदास हैं! उस युगके एम० ए० के गणितमें फर्स्ट, बड़े वकील, बड़े जुरिस्ट, बड़े जज, विश्वविद्यालयके वाइस-चान्सलर। वे धार्मिक और सत्यवादी थे—उन्होंने ढोंग नहीं रचा था, जिस चीजको सच मानते थे वही कहते थे,—इसीलिए इतने क्रुद्ध हुए थे। देखता हूँ, इस बातको लेकर सर आलिवर लाजसे भी बहस नहीं की जा सकती, अपने असामी गौर मल्लाहसे भी नहीं। इसीको अंध विश्वास कहते हैं। इसीको नाना तर्कों, बातचीतकी नाना पैंतरेबाजियोंसे सच मान लेना। विद्या-विद्या हुई तो बातचीतमें रंग-रोगन लगा सकता है, नहीं तो सीधे सरल शब्दोंमें कहता है। फर्क केवल इतना ही है। यही हैं सर गुरुदास! तुम्हारे सामने इन बातोंके कहनेमें डर लगता है, क्योंकि सभी जानते हैं कि आश्रम-वासी बड़े क्रोधी होते हैं। वे बात-बातमें गाली गुफ्ता करते हैं, खदेड़ कर मारने आते हैं।...किसी भी आश्रमपर मैं प्रसन्न नहीं हूँ मगर किसी खास आश्रमपर मेरे दिलमें लेशमात्र विद्वेष या आक्रोश भी नहीं है। मैं जानता हूँ, वे सभी समान हैं। सभी शून्यगर्भ हैं।

जाने दो आश्रमको...असल लक्ष्य तो तुम हो। तुम्हें अत्यन्त स्नेह करता हूँ, यह झूठ नहीं है। देखनेकी बड़ी इच्छा होती है। गाना सुनने और गप्प करनेकी भी। बहुत बूढ़ा हो गया हूँ, अब और कितने दिन जिन्दा रहूँगा। क्या इधर एक बार नहीं आओगे? मेरा स्नेहाशीर्वाद लेना—

श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

सामताबेड़, पानित्रास पोस्ट,
जिला—हावड़ा
३० वैशाख १३३८

कल्याणीयेषु। मण्टू, देशोद्धार करनेके लिए सुभाषचन्द्रके दलने मुझे जबर्दस्ती कुमिल्ला चालान कर दिया था। रास्तेमें एक दलने 'शेम-शेम' का नारा लगा-

या, डिब्बेकी खिड़कीसे कोयलेका चूरा सिर-बदनपर बिखेरकर प्रीति ज्ञापन की, और दूसरे दलने बारह घोड़ोंकी गाड़ीपर चढ़ा डेढ़मील लम्बा जुलूस निकालकर दिखा दिया कि कोयलेका चूरा कुछ भी नहीं है,—माया है। जो भी हो फिर रूपनारायण (हावड़ा-मेदिनीपुर जिलोंकी सीमाकी एक नदी) के तीरपर आ गया हूँ। मुक्त मनुष्यके लिए कोई व्यक्तिगत आशा नहीं होती—इस सत्यकी उपलब्धि करनेमें मेरे लिए कुछ भी बाकी नहीं है। जय हो कोयलेके चूरेकी! जय हो बारह घोड़ोंकी गाड़ीकी!

* मण्टू, 'शेष प्रश्न' पढ़कर खुश हुए हो यह जानकर बड़ा आनन्द हुआ। क्यों कि, खुश होना तो तुम लोगोंका नियम नहीं है। प्रवर्त्तक संघ (चन्दनगरकी एक सांस्कृतिक संस्था) ने इस साल अक्षय तृतीयापर मुझे फिर नहीं बुलाया। उन्होंने अनुरोध किया था कि इस पुस्तकमें अंतकी ओर आश्रमका जय गान करूँ। लेकिन साफ देखा गया कि मुझसे वह नहीं हो सका। 'शेष प्रश्न' में अति-आधुनिक-साहित्य कैसा होना चाहिए, इसीका कुछ आभास देनेकी चेष्टा की है। "खूब करूँगा, गर्जन करके गंदी बातें ही लिखूँगा" यही मनोभाव अति-आधुनिक-साहित्यका केन्द्रीय आधार नहीं है—इसीका थोड़ा-सा नमूनाभर दिया है। लेकिन बूढ़ा हो गया हूँ, शक्ति-सामर्थ्य पश्चिमकी ओर ढुलक गए हैं—अब तुम्हीं लोगोंपर इसका दायित्व रहा। तुम्हारी सारी रचनाओंको मैं बड़े ही ध्यानसे पढ़ता हूँ। रवीन्द्रनाथने तुम्हारे बारेमें पत्रमें जो कुछ लिखा है वह सच है। द्रुत उन्नति स्पष्ट ही दिखाई पड़ती है। लेकिन वह बाहरसे किसीकी कृपासे नहीं,—तुम्हारी अपनी ही सत्य साधनासे और खूनमें उत्तराधिकारसे जो पाया है उसके फलस्वरूप। पाण्डचेरीमें न रह कर कलकत्तेमें बैठकर भी ठीक ऐसा ही हो सकता था।

तुमने लिखा था कि श्री अरविन्द कहते हैं कि हम बौद्धिक युगकी सन्तान हैं। बात बहुत ही सच है। तुम्हारी रचनामें इस सत्यका बहुत कुछ प्रकाश क्रमशः उज्ज्वलतर होता जा रहा है। लेकिन अब ही तुम्हारे लिए सावधान होनेका समय आया है। डायलाग छोटा होना चाहिए, मीठा होना चाहिए; किसी भी हालतमें यह नहीं लगना चाहिए कि प्रयोजनके अतिरिक्त एक भी

---

* इस चिट्ठीका प्रारंभिक अंश पृ० ८० में (दूसरा पैराग्राफ) भी छप चुका है।

अक्षर अधिक कहा है। यही आर्टिस्टिक फार्मका भीतरी रहस्य है। पहले शायद लगे कि अपनी सारी बातें नहीं कह सका, मगर यहीं लेखक सबसे बड़ी भूल करता है। यह भी बल्कि अच्छा कि पाठक न समझें पर अधिक समझानेकी गरज लेखककी ओरसे प्रकट नहीं होनी चाहिए। समझे न? इसीलिए शायद कुछ लोग कहते हैं कि मण्टूकी रचनाओंमें तर्क-वितर्क बीच-बीचमें प्रबल आकार धारण कर लेते हैं। जो पढ़ता है अगर उसे सोच कर समझनेका मौका नहीं मिलता है, तो वह अपनी बुद्धिका प्रमाण नहीं पाता। ऐसी दशामें क्रोध आता है। मैं आलसी आदमी हूँ, चिट्ठी लिखनेसे डरता हूँ। लेकिन अगर तुम नजदीक होते तो तुम्हारी रचनाके ऐसे स्थलोंको दिखा देता। कितनी ही बार तुम्हारी रचनाओंको पढ़ते-पढ़ते लगा है कि अगर मण्टूने यहाँ इस तरहसे समाप्त किया होता—

मेरी उम्र हो गई है और रवीन्द्रनाथकी भी। अब कभी कभी आशंका होती है कि इसके बाद बंगला उपन्यास-साहित्यका स्थान शायद कुछ नीचे चला जायगा।

तुमसे मुझे बहुत बड़ी आशा है मण्टू। क्योंकि गंदगीको ही जो लोग साहसका परिचय समझकर स्पर्द्धा प्रकाश करते हैं तुम उनमेंसे नहीं हो। तुम्हारी शिक्षा और संस्कृति उनसे भिन्न है।

तुम्हारी नई कविताओंको ध्यानसे पढ़ा। बड़ी सुन्दर बनी हैं। अच्छा, यह तो बताओ कि क्या श्री अरविन्द बंगला पढ़ लेते हैं? 'शेष प्रश्न' पढ़नेके लिए देनेपर क्या क्रुद्ध होंगे? जानता हूँ, इन चीजोंको पढ़नेके लिए उनके पास समय नहीं है। मगर पढ़नेके लिए कहा जाय तो क्या अपमान समझेंगे? प्रवर्त्तक संघ क्रुद्ध हो गया है, इसीको देखकर डर लगता है, नहीं तो उनके जैसे गंभीर पंडितकी राय जाननेसे मेरी रचनाकी धारा शायद कोई दूसरा रास्ता ढूँढ़ती। उपन्यासके अन्दरसे मनुष्यको बहुतेरी बातें सुननेके लिए बाध्य किया जा सकता है, इस बातको क्या श्री अरविन्द स्वीकार नहीं करते हैं? जिसे हलका साहित्य कहते हैं उसके प्रति क्या वे अत्यन्त उदासीन हैं?

षोड़शी, रमा, हरिलक्ष्मी तुम्हें भेज दूँगा। मेरा स्नेहाशीर्वाद लेना।

—श्री शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय

सामताबेड़, पानित्रास पोस्ट
जिला हावड़ा
६ भादों, १३३८

परम कल्याणीयेषु। मण्टू, उत्तर न देनेके कारण यह न समझना कि तुम जो कुछ भेजते हो उसे ध्यानसे नहीं पढ़ता। श्री अरविन्द जो छोटे छोटे संदेश तथा तुम लोगोंके प्रश्नोंका उत्तर देते हैं जिन्हें तुम यत्नसे मेरे पास भेजते हो, उन्हें पढ़ता हूँ, सोचता हूँ, और फिर पढ़ता हूँ। हाँ, यह मानता हूँ कि अधिकांशको नहीं समझ पाता। कभी कभी वे मन चेतना या कानसं-सनेसके इतने भिन्न-भिन्न और सूक्ष्मातिसूक्ष्म पर्याय या स्तर बतलाते हैं कि वे मेरी बुद्धिसे परे हैं। कविताके सम्बन्धमें भी उनके विचारोंको सर्वदा नहीं मान पाता हूँ। दृष्टान्तस्वरूप कहा जा सकता है कि तुम्हारी जिस तरहकी कविताको उन्होंने सबसे अच्छा बताया है, वह तुम्हारी दूसरी कविताओंसे निम्न कोटिकी हैं। लेकिन यह भी कह देना चाहता हूँ कि वे ही कविताएँ वास्तवमें अच्छी हैं,— भावमें, भाषामें और छन्दमें। उनमेंसे चुनकर नम्बर दिये जायँ, तो किसीकी राय कभी नहीं मिलेगी। भले ही न मिले। देखता हूँ, कुछ दिनोंसे खूब मन लगाकर साहित्य-साधना कर रहे हो। इसमें कहीं भी तिकड़मकी चेष्टा नहीं है, जैसे तैसे यशके लिए दैन्य नहीं है। अब तुम्हारी सफलता सुनिश्चित है।

मेरे जन्म-दिनके उपलक्ष्में तुमने जो गीत भेजा है वह कविता और हृदयकी दृष्टिसे सुन्दर बना है। लेकिन अतिशयोक्ति दोषसे दुष्ट है। संकोच होता है। उस दिन इसीको लेकर नलिनी सरकार (बंगालके राजनीतिज्ञ और व्यवसायी) से कहा था कि,—मण्टू कहता है कि अगर तुम गाओ तो अच्छा हो। वह स्वर-लिपिके लिए तुम्हें लिखेगा। बेतारके अधिकारी कहते हैं कि जन्मदिवसके मौकेपर वे इस गीतको तुम्हारे नामसे प्रसारित करेंगे। गाएँगे

नलिनी। अच्छा, यह तो बताओ, मेरी षोड़शी आदि पुस्तकें हरिभाई (हरिदास चट्टोपाध्याय) ने भेजी हैं? मैंने चिट्ठी लिख दी है।

मैं तुम्हें कुछ और बातें बतलाना चाहता था मगर अब समय नहीं है, डाकखाना बन्द हो जायगा।

तुम्हारे उन पुराने कागज-पत्रोंको कल या परसों वापिस भेजूँगा।

हाँ, सुनो,—अभिजात वर्गकी एक 'परिचय' नामक त्रैमासिक पत्रिका निकली है, उसमें तुम्हारे मित्र नी...(नीरेन्द्रनाथ राय-बंगलाके आलोचक और बंगवासी कालिजके अँग्रेजीके अध्यापक) ने शेष प्रश्नकी आलोचना की है। शायद पढ़ी होगी। उनके कथनका सारांश यह है कि यह गोरा साहब (रवीन्द्रनाथके इसी नामके उपन्यासका नायक) का लड़का है। इसी लिए 'कमल' का चरित्र गोराकी नकलके सिवा और कुछ नहीं है। अर्थात् नी...की आँखें भूरी होनेके कारण उसकी बुद्धि बिल्कुल बिल्ली जैसी है। दुःखकी बात तो यह है कि ये भी कलम पकड़ते हैं और इनका लिखा छपता भी है, क्योंकि अपनी पत्रिका है। घमंड इस बातका है कि फ्रांसीसी जानते हैं, जर्मन जानते हैं। और अंतकी ओर अनुप्रासकी झंकारमें प्रार्थना भी है—हे भगवान्! रूपकार न होकर उपकार करना—इसी तरहकी कोई बात।

लेकिन अब एक मिनिट भी समय नहीं है। आशीर्वाद लेना।

—श्री शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय

सामताबेड़, पानित्रास, हावड़ा
विजयादशमी, ४ कार्तिक १३३८

मण्टू,-मेरा विजयादशमीका शुभाशीर्वाद लेना। बहुत दिनोंसे चिट्ठी न लिख सका, इसके लिए अनुतप्त हूँ।

पहले कामकी बातें खत्म कर लूँ। 'दोला' (दिलीपकुमारका एक उपन्यास) के शुरूके कुछ पृष्ठ इसीके साथ भेज रहा हूँ। हल चलानेका यह आडम्बर देखकर शायद पत्रोत्तरमें लिखोगे कि 'महाशय, आपकी भीखसे

बाज आया, अपने कुत्तेको बुला लीजिए। मेरी बाकी पाण्डुलिपि वापस कर दीजिये।' मुझे इसकी यथेष्ट आशंका है। लेकिन मेरी तरफसे भी कुछ कफियत नहीं है, ऐसी बात नहीं जैसे—

कुछ-कुछ तुम्हारी ही तरह मैं भी उन नारोंको नहीं मानता। जैसे कला कलाके लिए, धर्म धर्मके लिए, सत्य सत्यके लिए, आदि। कलाकी उपलब्धि सबकी एक प्रकारकी नहीं होती। वह अन्तरकी वस्तु है। उसकी संज्ञाका निर्देश करने जाना और उसके बाद ही एक जोरका झोंका देना अवैध है। धर्म, सत्य, आदि केवल बातें ही नहीं हैं। उनसे भी कुछ अधिक हैं, इस बातको सदा याद रखना चाहिये। कहानीका उद्देश्य अगर चित्तरंजन करना ही है तो भी यह तथ्य रह जाता है कि वह दो शब्दोंका समावेश है—चित्त और रंजन। डॉक्टर जितेन्द्र मजूमदार, एम. डी. और मण्टूराम दोनोंका चित्त एक वस्तु नहीं। एक चित्त जिस बातसे खुशीसे फूला नहीं समाता, हो सकता, है कि दूसरेको उसमें कोई भी आनन्द न मिले। एक बहुशिक्षित व्यक्तिको देखा है, जो 'दो धारा' के पन्द्रह-बीस पृष्ठसे अधिक नहीं पढ़ सका। मगर मैं किस तरहसे पुस्तक समाप्त कर गया, यह समझ ही न सका। कहानी लिखनेके नियमका उसमें कहाँ तक उल्लंघन किया गया है, यह मैं नहीं जानता और जाननेकी इच्छा भी नहीं हुई। प्रसन्न हुआ था, तृप्ति पाई थी, यह एक तथ्य है। फिर भी अगर तर्क किया जाय कि कला क्या है, तो उसे मैं नहीं जानता, नहीं समझता, अवश्य ही चुप रह जाऊँगा। लेकिन इस छप्पन सालकी उम्रवाले मनको किसी तरह राजी नहीं कर सकूँगा। अतएव हल चलानेके लिए ये मेरे तर्क नहीं हैं। जिन बातोंको तुमने बहुत सोचकर लिखा है उनकी उपन्यास लिखनेमें आवश्यकता नहीं है, यह नहीं कहता। लेकिन मेरे मनमें उपन्यास लिखनेकी जो धारणा है उससे लगा है कि 'स्वपन' के चरित्रपर विचार करनेसे उसके अन्तिम हिस्सेके साथ प्रारम्भके हिस्सेका उतना सामंजस्य नहीं है। इसके अलावा पुस्तकको छोटा करनेकी आवश्यकता प्रारंभकी ओर है। यह एक कौशल है, शुरूके हिस्सेको पढ़नेमें रुचि जिसमें क्लान्त न हो जाय। एक बात और है मण्टू। लिखने

बैठकर लिखनेसे न-लिखना बहुत कठिन काम है।...बन्द्योपाध्याय सचमुच ही बड़े लेखक हैं। मगर वे न लिखनेके इशारेको नहीं समझ पाते हैं। क्या इस बातको तुमने उनकी पुस्तकोंमें नहीं देखा है? उनकी पुस्तकें पढ़ते समय बहुधा मुझे इसी बातका अफसोस हुआ है कि...बाबू अगर इस कौशलको जानते। इसीको कहते हैं लिखनेका संयम। कहनेकी विषय-वस्तु जिसमें आवेगकी प्रखरताके कारण प्रयोजनसे एक पग भी अधिक न ठेल ले जा सके, बल्कि एक पग पीछे रहे, तो अच्छा। तुम अगर इतना छोड़ना पसन्द न करो, तो अपने यहाँके किसी साहित्यिक मित्रको दिखाकर उनकी राय ले लेना। हाँ, ऐसा भी हो सकता है कि जिन अंशोंको इस समय काट दिया है उन्हें पुस्तकके अन्त तक पहुँचते पहुँचते मैं ही फिर जोड़ दूँ। जो भी हो, तुम्हारी राय जान लेना अच्छा होगा। तब बहुत जल्द ही सब कुछ काट-छाँटकर दुरुस्त कर देनेमें अधिक देर नहीं लगेगी।

तुम्हारे नी...की चिट्ठियोंको बहुत ध्यानसे पढ़ा था। तुम मुझपर श्रद्धा रखते हो, प्यार करते हो, इसीलिए तुम्हें बहुत खला है। लेकिन इससे कुछ काम तो होगा नहीं। उन लोगोंका पर्वतप्रमाण दम्भ इससे रंचमात्र भी कम होगा, मुझे इसमें विश्वास नहीं। और उस ली...की बात, यह आदमी कितना अधम है, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। तर्क-वितर्कमें भी मेरे नामके संग उसका नाम युक्त होगा, यह याद आते ही समग्र मन लज्जासे कंटकित हो उठता है। उस आदमीके बारेमें इससे अधिक कुछ नहीं कहना चाहता। शायद एक दिन तुम लोग भी देखोगे कि विदेशी शासकके हाथों जिन स्वदेशी मुद्गरोंने देशके कल्याणपर सबसे बड़ा आघात किया है, यह छोकरा उन्हींकी जातिका है। जाने दो।

त...से शीघ्र ही एक दिन मुलाकात करूँगा। यह नहीं बतलाऊँगा कि तुमने उसके बारेमें मुझे कुछ लिखा है। लेकिन तुमने मुझे जो कुछ सूचित किया है उसीके आधारपर जिरह करके सत्यका आविष्कार करनेकी चेष्टा करूँगा। देखूँ, त...क्या कहता है। श्री अरविन्दके सम्बन्धमें कहीं भी तो मैंने वह बात नहीं कही है। देशके सारे लोग उनपर गहरी श्रद्धा रखते हैं। क्या केवल मैं ही नहीं रखता? लेकिन, आश्रमवासियोंके प्रति मेरा मन

बहुत प्रसन्न नहीं है। कारण है कुछ त...की बातें और कुछ दूसरे आश्रम-वासियोंके सम्बन्धमें मेरी अपनी जानकारी। इसके अलावा तुम्हारा चला जाना मुझे बहुत ही खटका है। जब आई० सी० एस० या कानून नहीं पढ़ा, तब दुःख हुआ था मगर जब गाने बजाने और उसके साथ ही साहित्यको तुमने अपनाया तब वह क्षोभ दूर हो गया था। सोचा था सभी नौकरी करेंगे और अपने देशके लोगोंको हाकिम या बैरिस्टर बनकर जेल भेजेंगे,—ऐसा क्यों हो? मण्टूको खाने-पहननेकी चिन्ता नहीं है, वह अगर भारतके कला-शिल्पको विदेशियोंकी नजरोंमें बड़ा बना सके, बुद्धिसे इसके पिटे पिटाये पथसे एक नया मार्ग निकाल सके, तो क्या इससे देशको कम लाभ होगा, कम गौरव होगा? तुम्हींसे एक बार सुना था कि विदेशियोंके पास 'सिम्फोनी' नामक एक वस्तु है जो सचमुच ही बड़ी है और उसे तुम देशके संगीतको देना चाहते हो। इसके बाद एक दिन सुना कि तुम सब कुछ छोड़कर वैरागी बनने चले गये हो। तब अचानक लगा कि मेरी अपनी ही कोई बहुत बड़ी क्षति हो गई है। इस जीवनमें तुम्हें शायद फिर नहीं देख पाऊँगा। क्या तुम समझते हो कि यह मेरे लिये कोई छोटा दुःख है? और कोई भले ही विश्वास न करे मगर तुम तो जानते हो। यह बात मुझे चिर दिन घोर दुःख देगी, इसमें मुझे सन्देह नहीं।

एक मजेकी बात सुनो मण्टू। उस दिन एक जरूरी कामसे बैंक गया था। कैशियर बंगाली हैं। सुना कि एक नामी ज्योतिषी हैं। बड़े जतनसे मेरा काम-काज कर चुकनेपर उन्होंने मेरी जन्म-कुंडली देखनी चाही। बोला, कुण्डली तो नहीं है मगर राशि-चक्र नोटबुकमें लिखा है। उसे उसी समय उन्होंने लिख लिया, मेरी हाथ-रेखाकी छाप ले ली। इसके बाद आगे उनका काम था। वे मेजसे पंचांग निकालकर गणनामें जुट गये। क्या कहा, जानते हो? कहा, एक सालके अन्दर आप दूसरा रास्ता पकड़ेंगे। पूछा, दूसरे रास्तेका क्या मतलब? बोले, आध्यात्मिक। मैंने जवाब दिया कि कुण्डलीमें वैसी बात है, यह मुझे काशीके भृगु-संहितावालोंने भी बतलाई थी। मगर मैं खुद इसपर पाई-भर भी विश्वास नहीं करता। क्योंकि आध्यात्मिताका 'आ' तक मेरे अन्दर नहीं है। बोले, एक सालके बाद अगर फिर

मुलाकात हुई, तो इसका जवाब दूँगा। मैंने कहा, एक सालके बाद भी मेरे मुँहसे यही सुनेंगे। उन्होंने केवल गर्दन हिलाई। उनका विश्वास है कि कुण्डलीका फलाफल गिनना जाने तो वह मिथ्या नहीं होता।

मण्टू, एक बात शायद तुमने पहले भी मुझसे सुनी होगी। मेरे वंशका एक इतिहास है। इस वंशमें, मेरे मझले भाई (प्रभास) स्वर्गीय स्वामी वेदानन्दको लेकर आठ पीढ़ियोंसे अखंड धारामें संन्यासी होते रहे हैं—केवल मैं ही घोर नास्तिक हुआ। वंशानुगत बात मेरे खूनमें उलटी बहने लगी। अतएव जीवनके पचपन वर्ष पार कर देनेपर किसीको नया शिष्य बना पानेकी आशा नहीं करनी चाहिए। लेकिन खजांची महाशय बिलकुल निःसंशय हैं कि मैं वैरागी होऊँगा ही!

सुना है कि तुम्हारा अनिलबरण धूलको चीनी बना सकता है। कहा जाता है कि आश्रमको सारी चीनी वही सप्लाई करता है,—क्या यह सच है? मैं विश्वास नहीं करता क्योंकि तब तो वह आश्रममें क्यों रहने जाता? कलकत्ता आकर अनायास ही एक चीनीकी दूकान खोल सकता।

बारीनसे आजकल अकसर मुलाकात होती है। वह कहता है कि अब वह उधर कभी न जायगा। उतनी भीषण सख्तीके अन्दर उसकी आत्मा पिंजड़ेको छोड़कर नहीं निकल गई, यह बड़े सौभाग्यकी बात है। लेकिन तुम्हारी 'मदर' के बारेमें उसके दिलमें गहरी भक्ति है। कहता है कि उस प्रकारकी अद्भुत व्यक्ति देखनेमें नहीं आती। कहता है कि उनकी सूक्ष्म दृष्टि एक अद्भुत वस्तु है। जितनी काम करनेकी शक्ति है, जितना अनुशासन है, बुद्धि भी उतनी ही प्रखर है। प्रत्येक व्यक्तिका प्रत्येक मामला उनकी नज़रोंके सामने रहता है। उनके आदेश और उपदेशके अतिरिक्त वहाँ कुछ भी नहीं हो सकता। इसीलिए जो लोग बाहरसे अचानक जाते हैं वे उनके सम्बन्धमें तरह तरहकी उलटी सीधी धारणायें लेकर लौटते हैं।...

'दोला' की काट-छाँटको जरा सोच विचार कर पढ़ना। एकाएक चिढ़ न जाना। ऐसा भी हो सकता है कि उसकी कितनी ही कटी-छँटी बातोंको अन्त तक मैं फिर बैठा दूँ। जो भी हो, मुझे उत्सर्ग न करना, बल्कि

रवीन्द्रनाथको करना। फिर एक बार मेरा विजयादशमीका स्नेहाशीर्वाद लेना। इति।

—श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

पुनश्चः—अनिलबरणकी चीनी बनानेकी खबर जरूर देना। बना सकता हो तो जावाकी चीनीका बड़ी आसानीसे बायकाट किया जा सकता है। यह तो देशका एक महान् काम है।

सामताबेड़, पानित्रास, हावड़ा
१० चैत्र १३३९

परम कल्याणीयेषु। मण्टू, इस बार सचमुचकी कैफियत है, नितान्त आलस्य ही नहीं। दो वर्ष पहिले दाहिने घुटनेमें रेलके दरवाजेकी चोट लगी थी। उसीको लेकर किसी तरह अबतक चल रहा था। लेकिन डेढ़ महीनेसे बिस्तरपर पड़ गया हूँ—सचमुच ही बिस्तरपर। कल कलकत्ता जा रहा हूँ एक्स-रे करानेके लिए। रवीन्द्र-जयन्तीके बाद डेढ़ महिने रातको नहीं सोया। पीड़ाकी सीमा नहीं। दिन रात शूल चुभने जैसा कष्ट हो रहा है। कभी अच्छा होऊँगा कि नहीं, नहीं जानता। आशा तो विशेष नहीं है। जाने दो इस बातको। क्योंकि एक तरहसे अच्छा ही होगा अगर फिर उठना न पड़े। आशा करता हूँ कि अन्तिम यात्रा सम्भवतः निकट आ जायेगी। तुम्हें चिट्ठी नहीं लिखी पर तुम जो कुछ भेजते हो, सब कुछ सचमुच ही ध्यानसे पढ़ता हूँ। कभी दिलमे प्रेरणा आती है कभी नहीं। लेकिन तुम लोगोंकी आशा, विश्वास और निष्ठाकी गम्भीरता मुझे कितनी अच्छी लगती है, यह नहीं कह सकता। लेकिन इसका कारण भी नहीं ढूँढ़ पाता कि अच्छी क्यों लगती है।

तुम्हारे 'जलातंके प्रेम-दीज' प्रहसनको पढ़ा है। कलकत्तासे लौटकर आते ही वापस कर दूँगा। अच्छा बना है। लेकिन इसका जीवन छोटा है, इस कारण रचनाको भी छोटा करना होगा। छोटा होनेहीसे तो रस घना होगा। इस बातको तुम्हें सुनना ही होगा।

शिशिर भादुड़ी अभिनय करेंगे, इस बातपर भरोसा न करना ही

अच्छा होगा। लौटकर सारी बातोंका जवाब दूँगा। पड़े पड़े अब कलम नहीं चलती। इति।

शुभाकांक्षी,

श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

ता. ५ जेष्ठ १३४०

परम कल्याणीयेषु। मण्टू, बहुत दिनोंसे तुम्हें एक चिट्ठी लिखनेका इरादा था लेकिन किसी तरह नहीं लिख सका। आज कलम लेकर बैठा हूँ, कुछ लिखूँगा ही।

...श्रीकान्तका पाँचवाँ पर्व लिखकर समाप्त कर दूँगा, 'अभया' आदिके सम्बन्धमें। और यदि तुम लोग कहते हो कि चौथा पर्व अच्छा नहीं हुआ, तो बस रथ यहीं रुका।

लेकिन इस बारेमें कुछ अपनी बात कहूँ। मेरा अभिप्राय था, साधारण सहज घटना लेकर उस पर्वको समाप्त करूँगा और नाना दिशाओंसे थोड़ेसे शब्दोंमें तथा साहित्यक संयमके अन्दरसे कितना रस सृजन किया जा सकता है, इसकी परीक्षा करूँगा। उपादान या उपकरणके प्राचुर्यसे नहीं, घटनाकी असाधारणतासे नहीं बल्कि अति साधारण ग्रामीण अंचलकी रोजमर्रा-की घटनाओंको ही लेकर यह पुस्तक समाप्त होगी। विस्तार न होगा, रहेगी गंभीरता, पुंखानुपुंख विवरण नहीं रहेगा, केवल इशारा रहेगा। केवल रसिकोंके आनन्दके लिये। कहाँ तक क्या हुआ है, नहीं जानता। पर उपन्यास-साहित्यके बारेमें जितना समझता हूँ, उससे यह आशा करता हूँ कि और कुछ भी अच्छा न बना हो, तो कमसे कम असंयत होकर उच्छृंखलताका स्वरूप प्रकट नहीं कर बैठा हूँ। लेकिन तुम्हारी राय चाहिए ही।

दूसरी बात है उस आश्रममें जानेके बादसे तुम्हारे बारेमें इस बातको मैं बड़े आनन्दसे लक्ष्य करता आ रहा हूँ कि वहाँ रहकर तुम्हारी पढ़ाई-लिखाई जितनी व्यापक, सुदूर-प्रसारी हुई है, उतनी ही गहरी और अन्तर्मुखी भी। और सचमुच ही हुई है। क्योंकि तुम्हारा ज्ञान और पांडित्य जैसा विनयी है, वैसा ही शान्त भी। खुद बहुत आघात पानेके बावजूद अपने पांडित्यका

लाठीसे तुमने किसीपर प्रतिघात नहीं किया। इस दिशासे तुम्हारी जितनी परीक्षा लेता हूँ, उतना ही मुग्ध होता हूँ कि मण्टू मेरे दलका है। वह सामर्थ्यके रहते हुए भी चुपचाप बर्दाश्त करता है, उपेक्षा करता है। लेकिन मुँह बनाकर मनुष्यका अपमान करने, उसपर आक्रमण करनेके लिए दौड़ नहीं पड़ता। उसके लिए कोई डर नहीं और उसके मित्रोंके लिए चिन्ताका कोई कारण नहीं। अबसे चिर दिन उसकी यथार्थ भद्रता उसे नीचे जानेसे बचाती जायेगी। मण्टू, मैं उनसे बहुत डरता हूँ जो स्वयं साहित्यसेवी होकर भी अपने जनोंकी खुले आम लांछना करते फिरते हैं। इस बातको वह किसी भी तरह नहीं समझ पाते कि दूसरेको तुच्छ सिद्ध करनेसे ही अपना बड़प्पन सिद्ध नहीं हो जाता। इसके लिए कुछ और भी चाहिए। वह इतना सीधा रास्ता नहीं है।

उस दिन 'पुष्प-पात्र' मासिक पत्रिकामें तुम्हारी रचना पढ़ी। उसमें दूसरी कितनी ही बातोंके अन्दर तुमने क्षुब्ध हृदयसे बू...के नारी-विद्वेषका प्रतिवाद किया है, कारणका अनुसंधान किया है। तुम उसे प्यार करते हो, तुम्हारे प्यारमें कहीं आघात पहुँचे, इसके लिए मेरे मनमें काफी दुबिधा और संकोच है। फिर भी लगता है कि तुम्हें भीतरकी कुछ बातें जान लेनी चाहिए। किसीने लिखा है कि साहित्य-सृजनके अन्तरालमें जो स्रष्टा रहता है, यदि वह छोटा हुआ तो उसकी सृष्टि भी बड़े होनेमें बड़ी बाधा पाती है। इस बातपर मैं भी विश्वास करता हूँ। बू...ने लिखा है कि सावित्री जैसी मेसकी नौकरानी मिलती, तो मैं मेसहीमें पड़ा रहता। लेकिन मेसमें पड़े रहनेसे ही नहीं होता—सतीश भी बनना चाहिए। नहीं तो सावित्रीके हृदयको नहीं जीता जा सकता, तमाम जिन्दगी मेसमें बितानेपर भी नहीं। इसके अलावा यह लड़का जरा भी नहीं समझता कि सावित्री सचमुच ही नौकरानी कोटिकी लड़की नहीं है। पुराणोंमें लिखा है कि लक्ष्मी देवीको भी मुसीबतमें पड़कर एक बार ब्राह्मणके घर दासीका काम करना पड़ा था। पाँच पाण्डवोंमेंसे अर्जुन उत्तराको जब नाचना गाना सिखाते थे, तब उनकी बात सुनकर यह नहीं कहा जा सकता कि इस तरहका उस्तादजी मिलनेपर सभी लड़कियाँ नाचना गाना सीखनेके लिए पागल हो जातीं। सारे सम्प्रदायोंकी तरह वेश्याओंमें भी ऊँची-नीची होती हैं। वेश्याके निकट जो वैश्या दासी होकर रहे उसका और

उसकी मालकिनका चाल-चालन एक नहीं भी हो सकता। इनके बारेमें अनुभव जुटानेके लिए रुपया अधेली भी खर्च करनेसे काम चल जाता, लेकिन उनको जाननेके लिए बहुत कुछ खर्च करना होगा। आसानीसे नहीं मिलतीं। रंग पोतकर वे बरामदेमें मोढ़ेपर नहीं आ बैठतीं। तुमने जिस मिष्टभाषिणी सुशीला बाईजी (राजलक्ष्मी) का उल्लेख किया है, उसे क्या सभी देख पाते हैं? उसके लिए अनेक उपकरण, अनेक आयोजन न हों, तो नहीं चल सकता। या तो अपने बहुत रुपये या किसी राजकुमार मित्रके बहुत रुपये खर्च हुए बिना ऊपरी स्तरमें प्रवेशाधिकार नहीं मिलता। जो रास्ते-परसे आदमी पकड़कर खपरैलके घरमें जा घुसती हैं उनका परिचय मिलता है। गरीबोंका अनुभव नीचेके स्तरमें ही सीमित रहता है। इसीलिए वह श्रीकान्तकी टगर और बाड़ीवालीको ही पहिचानता है। यह सारे उदाहरण अनावश्यक और लिखनेमें भी लज्जाजनक हैं। लेकिन जो लोग अन्धाधुन्ध नारी-जातिके प्रति ग्लानिके प्रचारको ही यथार्थवाद समझते हैं उनमें आदर्शवाद तो है ही नहीं, यथार्थवाद भी नहीं है। है केवल अभिनय और झूठी स्पर्धा—न जाननेका अहंकार। स्त्रियोंके विरुद्ध कलह करनेकी स्पिरिटसे साहित्यका सृजन कभी नहीं होता।...

मेरा आन्तरिक स्नेह और शुभेच्छा लेना। साहानासे मुलाकात हो तो कह देना कि मैं उसे आशीर्वाद देता हूँ। —शरत् बाबू

सामताबेड़, पानित्रास, हावड़ा,
१० भाद्रपद १३४०

कल्याणीयेषु। मण्टू, तुम्हारी चिट्ठी मिली। श्रीकान्तके चतुर्थ पर्वपर तुम्हारा भेजा हुआ निबन्ध पहले ही मिल गया था। पहले लगा था कि निबन्ध बहुत बड़ा है। शायद काटने-छाँटनेकी जरूरत है। लेकिन दो बार बड़े ध्यानसे पढ़नेके बाद मुझे सन्देह नहीं रहा कि इस रचनामें कुछ काटा-छाँटा नहीं जा सकता। मेरी पुस्तकके बारेमें लिखा है इसीलिए मुझे इतना अच्छा लगा है कि नहीं, यह बात मेरे मनमें बार बार आई है। मगर बहुत

सोचनेपर भी कहनेमें संकोच नहीं है कि यह आलोचना तुमने किसी भी पुस्तकके बारेमें की होती मुझे इतनी ही अच्छी लगती। इसका कारण मुख्यतः श्रीकान्तकी ही बातें हैं, यह सच है। पर साहित्यके विचारकी जिस धाराकी तुमने इतने माधुर्य और सहृदयतासे आलोचना की है वह केवल सुन्दर ही बन पड़ी है, यही नहीं, निरपेक्ष न्याय भी हुआ है। इसलिए कोई भी सहृदय पाठक इसे स्वीकार करेगा। इसके अलावा आलोचना कथोपकथनकी शैलीमें की गई है। मण्टू, तुमने यह बड़ी अच्छी पद्धतिका आविष्कार किया है। इस तरहसे नहीं लिखनेसे इतने बड़े निबन्धको चाहे वह जितना भी अच्छा क्यों न हो पढ़नेके लिए शायद लोगोंमें धीरज नहीं रहता। पढ़नेमें एक सुन्दर कहानी जैसा लगता है। इसे किसी अच्छी मासिक पत्रिकामें छपनेके लिए भेजूँगा और अनुरोध करूँगा कि इस रचनाकी कोई भी चीज़ काटी न जाय। लेकिन तुम्हें प्रूफ भेजना सम्भव होगा कि नहीं, यह ठीक ठीक नहीं बता सकता। पर अगर समय हुआ तो यही होगा।

श्रीकान्त चतुर्थ पर्व तुम्हें इतना अच्छा लगा है जानकर कितनी प्रसन्नता हुई यह नहीं बतला सकता। इसका कारण यह है कि इस पुस्तकको मैंने सचमुच ही बड़े यत्नसे मन लगाकर हृदयवान् पाठकोंको अच्छा लगनेके लिए ही लिखा है। तुम्हारे जैसा एक पाठक भी श्रीकान्तको भाग्यसे मिला है, यही मेरे लिए परम आनन्दकी बात है। अब दूसरा पाठक नहीं चाहिए। कमसे कम न मिले तो भी दुःख नहीं। और मन ही मन सोचा था कि न जाने कितनी भाषाओंकी कितनी ही पुस्तकें तुमने इम कई वर्षोंमें पढ़ी हैं फिर भी उनके बीच मेरे जैसे मूर्ख आदमीकी रचना पढ़नेके लिए तुम्हें समय मिला है, यह क्या कम आश्चर्यकी बात है? जानता हूँ कि मैं कितना तुच्छ, कितना सामान्य लेखक हूँ। न विद्या है और न पाण्डित्य। देहाती आदमी जो मनमें आता है लिख जाता हूँ। इसी लिए आजके जमानेमें पण्डित प्रोफेसर लोग जब गाली गलोज करते हैं तो डरके मारे चुप रह जाता हूँ। सोचता हूँ कि इनके सामने मैं कितना नगण्य, कितना साधारण हूँ। लेकिन इसके अन्दर जब तुम्हारे जैसे मित्रकी प्रशंसा मिलती है तो इस बातको गर्वके साथ याद करता हूँ कि पाण्डित्यमें मण्टू इनसे छोटा नहीं है। फिर भी

उसे भी तो अच्छी लगी है। यह मेरे लिए बहुत बड़ा भरोसा है, बहुत बड़ी सान्त्वना है।

बहुत दिनोंसे तुम्हे नहीं देखा है। देखनेकी बहुत इच्छा होती है। दशहरेमें अगर पाण्डिचेरी आऊँ तो क्या दो एक दिनके लिए रहनेकी व्यवस्था कर सकते हो? आश्रममें रहनेका नियम नहीं है, यह मैं जानता हूँ। पर वहाँ क्या कोई होटल नहीं है? अगर हो तो लिखना। इति।

—तुम्हारा नित्य शुभानुध्यायी, श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

सामताबेड़, पानित्रास, हावड़ा
१९ माघ १३४०

परम कल्याणीयेषु। मण्टू, बहुत दिनोंसे तुम्हें कुछ नहीं लिखा। आज सवेरे अचानक तुम्हें लिखनेकी इच्छा इतनी प्रबल क्यों हो उठी यही सोचता हूँ। शायद फरीदपुरके दीनेश बाबूकी आन्तरिक बातें होंगी। तीन दिन हुए फरीदपुरसे लौटा हूँ। वहाँ साहित्य-सम्मेलन था और म्युनिसिपैलिटी-एड्रेस। मंचपर जब लम्बा और सारगर्भ निबन्ध पढ़ा जा रहा था तब नैपथ्यमें 'अनामी'की आलोचना चल रही थी। हाँ, अस्सी फीसदी विरोधी मत था। इसके बीच अचानक एक सज्जन स्वीकार कर बैठे कि अनामी पुस्तकको उन्होंने शुरूसे आखिरतक चार बार पढ़ा है और चार बार और पढ़नेकी इच्छा है।

तब "कहते क्या हैं दीनेश बाबू, आप फरीदपुर बारके विशिष्ट रत्न हैं। प्रचण्ड तार्किक वकील हैं—आपमें यह दुर्बलता कैसी!"

"दीनेश बाबू, आपका दिमाग क्या खराब हो गया है?"

"दीनेश बाबू, देखता हूँ आप संसारके अष्टम आश्चर्य हैं।" आदि आदि।

अवश्य ही मैं चुप था—मौन गवाहकी तरह। एक बार मुझे अकेला पाकर इन्हीं दीनेश बाबूने कहा, "शरत् बाबू, सारी पुस्तकें संसारमें सभीके लिए नहीं हैं। मैं शान्तदास बाबाजीका शिष्य,—वैष्णव हूँ। भगवानमें विश्वास

करता हूँ। दिलीप बाबूने जिस भावकी प्रेरणासे कवितायें लिखी हैं संसारमें उसकी तुलना कम ही है। जब भी समय मिलता है मुग्ध होकर कविताओंको पढ़ता हूँ। कितनी अच्छी लगती हैं, यह दूसरेको नहीं समझा सकता।"

सुनकर मन ही मन सोचा, इससे बढ़कर निष्कपट, सच्ची आलोचना और क्या हो सकती है? जिस तारको तुमने झंकृत किया है, उनके हृदयका वही तार गुनगुनाकर बज उठा है। लेकिन जिसका तार नहीं बजा वह किसीके चार-चार बार पढ़नेकी बात सुनकर आश्चर्य प्रकट न करेंगे, तो क्या करेंगे? और जो लोग केवल विस्मय प्रकट करनेको ही काफी नहीं समझते हैं, वे गाली-गलौजपर उतर आते हैं। मात्रा जितनी ही बढ़ती जाती है, अपनेको उतना ही निडर और बहादुर आलोचक समझते हैं। ऐसा ही तो देखता आ रहा हूँ।

उस दिन हीरेन नामके एक लड़केने मुझे चिट्ठी लिखी है कि वह 'अनामी' के लिए एक आलोचना-सभा करना चाहता है और मुझे सभापति बनाना चाहता है। मैंने उस चिट्ठीको पानेके डेढ़ मिनटके भीतर ही जवाब दे दिया—राजी हूँ। मन स्थिर करना और डेढ़ मिनटके अन्दर जवाब देना! मैं कहता हूँ कि दीनेश बाबूके चार-चार बार 'अनामी' पढ़नेसे भी यह बात विस्मयजनक है। आगामी सभामें इस बातका उल्लेख करूँगा।

कुछ दिनोंसे तुमसे एक अनुरोध करनेकी बात सोच रहा हूँ। वह है आ... की रचनाके सम्बन्धमें। वह तुम्हें श्रद्धा करता है, तुम्हारे कहनेसे सुन भी सकता है। उससे कहना कि लिखनेमें वह जरा संयत हो। हाँ, संयम वस्तु एक प्रकारकी सहज बुद्धि (इन्सटिंक्ट) है। अपनेमें अगर न हो तो दूसरेको समझाया नहीं जा सकता। फिर भी कहना कि जहाँ तहाँ अकारण ही दूसरोंकी रचनाओंके उद्धरण देना, इससे बढ़कर असुन्दर वस्तु दूसरी नहीं। अमुक ग्रन्थकारकी '—' इन बातोंसे मैं एकमत हूँ और उस आदमीकी ' ' ये पंक्तियाँ भद्दी हैं, अमुक लेखकी ' ' इन पंक्तियोंने बड़े ही सुन्दर ढंगसे प्रकट किया है, आदि आदि। ये बातें अत्यंत रूखे ढंगसे पाठकसे कहना चाहती हैं कि तुम लोग देखो कि इस छोटी-सी उम्रमें मैंने कितना समझा है, कितनी पुस्तकें पढ़ी हैं। मण्टू, तुम अपनी रचनाओंके

उद्धरणोंको उससे एक बार पढ़नेके लिए कहना। कहना कि तुम्हारे बहुविस्तृत और गहरे अध्ययनमें यह नितान्त आवश्यकताके कारण आ पड़ी है। अकारण ही नहीं आई हैं, और पाण्डित्य दिखानेकी दाम्भिकतासे भी नहीं। आ... लड़का है, अभीसे उसे इस विषयमें सावधान कर देनेसे आशा है फल अच्छा ही होगा। वह शायद नहीं जानता कि उद्धरणके मामलेमें तुम्हारा अनुकरण कर पाना सहज काम नहीं। बहुत ही कठिन है। दूसरे हजारों प्रकारके असंयमोंकी बात नहीं उठाऊँगा। क्योंकि अगर बू...उसका साहित्यिक आदर्श (हीरो) है, तो उसे सँभाला नहीं जा सकेगा। गहरी पीड़ाके साथ ही ये बातें तुमसे कहीं। मण्टू, तुम्हें न जाने कितनी बार कहा है कि लिखनेमें संयम साधना जैसी दूसरी कठिन साधना और नहीं। जिसे अनायास ही लिख सकता था उसे न लिखना। रसिक पाठकका मन तृप्तिसे परिपूर्ण हो जाता है, जब वह संयमके इस चिह्नको देखता है। जाने दो। मेरी वह चिट्ठी जो 'स्वदेश ओ प्रचारक' में प्रकाशित हुई थी, उसके बारेमें कविने मुझे एक चिट्ठी लिखी थी। उसके अन्तमें लिखा था "तुमने बारबार मुझे तीक्ष्ण कठोर भाषामें आक्रमण किया है। लेकिन मैंने कभी खुले आम या गुप्त रूपसे निन्दा करके बदला नहीं लिया। इस रचनाने उस फेहरिस्तमें एक अंक और जोड़ भर दिया है।"

उस दिन उमाप्रसाद (डॉ० श्यामाप्रसाद मुखर्जीके बड़े भाई) ने मुझसे कहा था कि इस चिट्ठीको लिखकर मैंने अन्याय किया है। क्योंकि इसकी प्रत्येक पंक्तिमें जहर फैल गया है। लेकिन क्या करूँ, लाचार हूँ। जो लिख गया वह अब वापिस नहीं लिया जा सकता। अब कविसे मेरा विच्छेद शायद सम्पूर्ण हो गया। किन्तु इस विषयमें तुमने 'स्वदेश' में जो चिट्ठी लिखी है वह वह बहुत अच्छी बनी है। दुःख प्रकट हुआ है, पर क्रोध नहीं। मुझसे यही त्रुटि हो गई है। लेकिन न जाने क्या हो गया, 'परिचय' की उस रचनाको पढ़ते ही सारे बदनमें आग लग गई। तब कागज कलम लेकर चिट्ठी लिख डाली।

श्रीकान्तके चतुर्थ पर्वकी आलोचना 'विचित्रा' में एक बार फिर पढ़ी। अगर यह श्रीकान्त न होकर और कुछ होता तो मुक्त कण्ठसे प्रशंसा करके

चैनकी साँस लेता। रचना सचमुच ही सुन्दर है। जिसने सचमुच ही पढ़ा है और समझा है उसके आनन्दकी अभिव्यक्ति है।

मण्टू, बीच-बीचमें चिट्ठी लिखना, जवाब मिले चाहे न मिले। तुम्हारी चिट्ठी पाना मेरे लिए परम तृप्तिकी बात है। एक बात और। बन्धु सुरेन मैत्र (जिनका सारा सिर गंजा है, प्रो० शिवपुर इंजीनियरिंग कालेज, जिनके यहाँ हम जाते थे) श्री अरविंदके बड़े भक्त हैं। उन्होंने मुझसे अनुरोध किया है कि आज तक तुमने मेरे बारेमें उन्हें जितनी रचनायें भेजी हैं (और लिखनेके बावजूद जिन्हें मैंने कभी वापिस नहीं किया है) उन्हें एक बार पढ़नेके लिए माँगा है। मैंने कहा है कि दूँगा। लेकिन कहीं गुस्सा न हो जाना। सुरेन ब्राह्म होनेपर भी आदमी अच्छा है। इति।

तुम्हारा नित्य शुभाकांक्षी—श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

सामतावेड़, पानित्रास, हावड़ा
२० माघ १३४०

मण्टू, अभी अभी तुम्हारी रजिस्ट्री चिट्ठी मिली। कामकी बातें पहले कह दूँ। (१) 'रंगेर परश' भेजना। दो-एक पृष्ठोंमें जो कुछ बन पड़ेगा लिखूँगा। लेकिन कह दूँ कि कहानी उपन्यासके सिवा मैं और कुछ भी नहीं लिख पाता। निबन्ध तो भाषाकी दरिद्रताके कारण बिलकुल अपठनीय हो जाता है। मेरी चिट्ठी लिखनेकी भाषा तो देख ही रहे हो। कविके सम्बन्धमें 'स्वदेश'की चिट्ठी कैसी भद्दी हो गई है! फिर भी अपनी सीधी सादी देहाती भाषामें आनन्द प्रकट करनेका लोभ संवरण करना कठिन है। अतएव लिखूँगा ही। कोई मुझे रोक नहीं सकेगा।

(२) हीरेनकी बात उस चिट्ठीमें लिखी है। 'अनामी'की आलोचना-सभामें सम्मिलित होऊँगा।

(३) श्रीकान्तके चतुर्थ पर्वकी 'विचित्रा' में प्रकाशित आलोचनाको किसी भी तरह क्यों न छपाओ लोग पढ़ेंगे ही। लेकिन 'रंगेर परश' के साथ देना शायद अच्छा ही होगा। बल्कि और किसीकी राय भी ले लेना।

एक बात और। 'पथके दावेदार' की आलोचना या उल्लेख न करना ही अच्छा है। क्योंकि आजकल आईन-कानून इतना कठोर हो गया है कि केवल उसीके लिए ही सरकार शायद सारी पुस्तकको ज़ब्त कर ले।

जिस उपन्यासको तुम लिख रहे हो (जो तीन चार महीनेमें समाप्त होगा) आशा है वह और भी अच्छा होगा। कथोपकथन जहाँ भी आये, सहज भाषा काममें लाना। बहस छोटी होनी चाहिए। अर्थात् एक संग ढेर-सी नहीं। एक अध्यायमें कुछ, दूसरे अध्यायमें बाकी हिस्सा—इसी तरह। उपमा, उदाहरण कोई भी चीज़ रवीन्द्रनाथकी तरह निरर्थक और असम्बद्ध न हो उठे। मनुष्यको अलंकारसे सजानेकी रुचि और सुनारकी दुकानमें अलंकारोंसे 'शो केस' के सजानेकी रुचि एक नहीं है। इस बातको सदा याद रखना होगा। अलंकृत वाक्यका बाहुल्य कितना पीड़ादायक होता है, इस बातको केवल पाठक ही जानते हैं। लेकिन अब बस, बहुत ढेर-सा उपदेश बिना मूल्य दे डाला। संयमका पाठ पढ़ाते हुए देखता हूँ खुद ही सबसे अधिक असंयत हो गया हूँ। आशीर्वाद और प्यार लेना। —श. च.

पी ५६६ मनोहरपुकुर, कालीघाट, कलकत्ता
७ जेठ १३४२

परमकल्याणीयेषु। पहले अपनी खबर दे दूँ। परसों घरसे लौटनेके बादसे सिरमें दर्द है। बुद्धदेव भट्टाचार्य, डा० कानाई गांगुली बैठे हुए हैं। एक डाक्टरखानेमें टेलीफोन किया जा रहा है और मेरे ड्राइवरसे कहा जा रहा है कि वह मोटर निकाले। अर्थात् खूनका दबाव दिखाने जाऊँगा। अगर दबाव अधिक न हुआ तो अच्छा ही है, अगर हुआ तो बिस्तरपर पड़कर परम आनन्दसे समय बिताऊँगा। मेरे लिए इससे बढ़कर आनन्द और आरामकी दूसरी वस्तु नहीं है। श्री भगवान यही करें। जाने दो।

बुद्धदेवसे तुम्हारी चिट्ठी आधी पढ़ा ली है। किसी फ्रान्सीसी जाननेवाले मित्रसे बाकी आधीको पढ़ा लूँगा।

मण्टू, इस अति तुच्छ 'निष्कृति' को लेकर समरांगनमें कूद पड़ना और टीनका खड्ग लेकर भैंसेको काटने जाना एक ही बात है। सचमुच ही अपने

अन्दर विशेष बल नहीं पाता। केवल यही एक बात याद आती है कि तुम्हारे गुरुदेवका आशीर्वाद है और तुम्हारा अकृत्रिम स्नेह और श्रद्धा। लेकिन भाई, ऐसा लगता है कि मेरी ओरसे कुछ भी नहीं है।

तुम श्रीकान्तका अनुवाद करनेमें क्यों संकोच कर रहे हो? अगर अनुवाद होना है तो तुम्हींसे होगा। भवानीको बुलाकर श्रीकान्त चतुर्थ पर्व देकर किसी अध्यायका अनुवाद कर डालनेके लिए कहा था। आठ-दस दिनके बाद वह खुद तो आया नहीं, चिट्ठी लिखकर सूचित कर दिया कि हिम्मत नहीं होती और जैसी अँग्रेजीमें उसने चिट्ठी लिखी है उससे लगता है कि उसकी बात गलत नहीं है। उसने सच ही लिखा है, उससे नहीं होगा। यदि होगा तो वह अखबारी भाषा होगी। सोमनाथ मैत्र दूसरे पर्वका अनुवाद करनेके लिए उद्यत हो गये हैं, इस बातको मैं खुद भी नहीं जानता। 'विचित्रा' के उपेनने अगर खुद यह व्यवस्था की हो, तो बात दूसरी है। पता लगाऊँगा। मैं तो खुद सोच भी नहीं पा रहा हूँ कि तुम्हारे सिवा इस कामको और कौन हाथोंमें ले सकता है। 'निष्कृति'का जो अनुवाद तुमने किया है उससे अच्छा कौन करता? लेकिन तुमसे श्रीकान्तका अनुवाद करनेके लिए कहनेकी इच्छा नहीं होती। क्योंकि इतने बड़े परिश्रमके काममें हाथ लगानेसे तुम्हारे कामोंको क्षति पहुँचेगी।

'निष्कृति' के बारेमें तुम्हें जिस तरहकी व्यवस्था करनेकी इच्छा हो, करना। यहाँ छोटी कहानियाँका अनुवाद करानेकी चेष्टा कर सकता हूँ। मगर आदमी नहीं मिलते। 'पण्डित महाशय'का अनुवाद मेरे ही पास है, मगर उसे देखनेसे शायद तुम्हें दुःख होगा। मायाके साथ मेरी अभीतक मुलाकात नहीं हुई। आशा करता हूँ कि दो एक दिनमें हो जायगी। मेरा स्नेहाशीर्वाद लेना। इति।

—शरत् दादा

पुनश्च—बाकी समाचार बुद्धदेव ही तुम्हें देगा।

—श० च०

पी. ५६६ मनोहर पुकुर, कलकत्ता
३ माघ १३४१

परम् कल्याणीयेषु। मण्टु, कल रातको गाँवके घरसे यहाँ आ गया हूँ। तुम्हारी चिट्ठियाँ मिलीं। एक एक करके कामकी बातोंका जवाब दूँ।

(१) तुम्हारी निशिकान्तकी तसवीर अच्छी बनी है। बहुत दिनोंके बाद फिर तुम्हारा मुँह देखा, बड़ी प्रसन्नता हुई। अब सचमुच ही देखनेकी बड़ी इच्छा होती है। लेकिन आशा छोड़ दी है। सोचा है, इस जीवनमें अब नहीं देख सकूँगा।

(२) टाइपराइटर सही सलामत पहुँच गया है, यह संतोषकी बात है। डर था कहीं विकलांग होकर तुम्हारे आश्रममें जा पहुँचे। उस दिन हीरेनने आकर कहा कि मण्टु दादाका अपना टाइपराईटर पुराना हो गया है, उन्हें एक नई मशीन चाहिये। कहा, जरा दौड़ धूपकर भेज दो न हीरेन। वह राजी हुआ। यह सब कुछ उसीने किया है। मैं जड़ वस्तु हूँ। मुझसे कुछ भी नहीं होता। मैंने केवल रुपयेका चेक लिख दिया था। तुम्हें पसंद आया है, इससे बढ़कर मेरे लिये आनन्दकी बात नहीं। जिस आदमीने अपना सब कुछ दे दिया, उसे देना देना नहीं है पाना है। मुझे बहुत कुछ मिला, तुमसे बहुत अधिक।

(३) श्री अरविन्दके हाथकी लिखी चिट्ठी सम्हालकर रख दी है। यह एक रत्न है।

(४) 'निष्कृति' का अच्छा अनुवाद करनेके लिये तुम यथासाध्य करोगे, इसे मैं जानता था। तुम मुझे सचमुच प्यार करते हो, इसलिये नहीं। जो यथार्थमें साधुका व्रत ग्रहण करते हैं यह उनका स्वभाव है। इसको किये वगैर उनसे नहीं रहा जाता। या तो करते नहीं है, पर करनेपर बेगार नहीं करते।

(५) जब श्री अरविन्दने स्वयं देख देनेका संकल्प किया है, तो अनुवाद अच्छा ही होगा। लेकिन मण्टु, पुस्तकमें अपना कौन-सा गुण है? श्री अरविन्दको क्यों अच्छी लगी, नहीं जानता। कमसे कम अच्छी नहीं लगती, तो अचरज नहीं होता, खिन्न भी नहीं होता। तुम जब श्रीकान्तका प्रचार कर सकोगे, तभी आशा करूँगा कि एक बंगाली कहानीकारको

पश्चिमवाले कुछ श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते हैं। तुम्हारा उद्यम और श्री अरविन्दका आशीर्वाद रहा, तो यह असंभव भी एक दिन संभव होगा। इसकी मुझे उम्मीद है।

(६) अनुवादके मामलेमें तुम्हारी पूर्ण स्वतंत्रता मैंने स्वीकार की है। इसका कारण यह है कि तुम तो केवल अनुवादक ही नहीं हो, खुद भी बड़े लेखक हो। तुम्हें अकिंचित्कर साबित करनेवाले लोगोंकी कमी नहीं, उनमें यह चेष्टा है और अध्यवासायकी भी सीमा नहीं। होने दो। उनकी समवेत चेष्टासे तुम्हारी प्रतिभा और एकाग्र साधना कहीं बड़ी है। तुम्हारे गुरुकी शुभाकांक्षा तो सब कुछके पीछे है ही। उनकी सारी कुचेष्टायें सफल होंगी और तुम्हारे अंतरकी जाग्रत शक्ति सार्थक नहीं होगी, ऐसा हो ही नहीं सकता मण्टु।

(७) रवीन्द्रनाथ मुझे इन्ट्रोडयूस करना चाहेंगे, इसका भरोसा नहीं करता। मेरे प्रति तो वह प्रसन्न नहीं हैं। इसके अलावा उनके पास समय ही कहाँ है। साहित्य-सेवाके कामके बारेमें वह मेरे गुरुकल्प हैं, उनका ऋण मैं कभी चुका नहीं सकूँगा। मन ही मन उनपर इतनी श्रद्धा, भक्ति रखता हूँ। लेकिन भाग्यने गवाही नहीं दी। मेरे प्रति उनकी विमुखताका अंत नहीं। अतएव इसकी चेष्टा करना बेकार है।

(८) हीरेन शायद आज ही कलके अंदर आवेगा। उसे तुम्हारे कागज भेज देनेके लिये कहूँगा।

(९) बाकी रही तुम्हारी बात। मैं तुम्हारा बहुत ही कृतज्ञ हूँ, मण्टु, इससे अधिक क्या कहूँ। चिट्ठी लिखनेकी बात सदासे मेरे लिये जटिल रही है। मानो सम्हालकर लिख ही नहीं पाता। इसलिये मुझे जो बातें कहनी चाहिये थीं कह नहीं सका था। वह मेरी अक्षमता है, अनिच्छा कभी नहीं। इसपर विश्वास करना।

मेरा स्नेहाशीर्वाद लेना और सौरीनको कहना। लड़केकी बात याद नही आ रही है। स्वर्गीय दादा महाशयके यहाँ या तकूके यहाँ शायद देखा होगा।

(१०) श्री अरविन्दकी नव वर्षकी प्रार्थना सचमुच ही बहुत अच्छी लगी। यथार्थमें वह बहुत बड़े कवि हैं।

शुभाकांक्षी,

श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

पी. ५६६ मनोहर पुकुर, कालीघाट, कलकत्ता
७, चैत्र १३४१

परम कल्याणवरेषु। मण्टू, बहुत दिनोंसे तुम्हें चिट्ठी नहीं लिख सका। जानता हूँ अन्याय हुआ है। इसकी सजा है, इससे भी बेखबर नहीं। लेकिन यह भी देखता आ रहा हूँ कि अक्षम लोगोंकी अक्षमता अगर अकृत्रिम होती है तो उसे पूरा करनेके लिये भगवान आदमी भी जुटा देते हैं, एकदम रसातलमें नहीं भेज देते। बुद्धदेव भट्टाचार्यके रूपमें यह आदमी मुझे मिला है। मैं तुम्हें जो कुछ कहना चाहता हूँ उसके मार्फत कहता हूँ। और वही खबर भी दे जाता है। तुम्हारी तरह उसका स्नेह भी मेरे प्रति सचमुच ही आन्तरिक है। सचमुच ही चाहता है कि मेरा भला हो, मेरे यश, मेरी प्रतिष्ठामें कहीं कोई कमी न रह जाये। उस दिन, उसने मुझे जबरदस्ती पकड़ ले जाकर हॉफमैनके कैमरेके सामने बैठाकर तसवीर उतरवा ली, तब छोड़ा। कहा, दिलीपकुमारकी माँग है, अवहेलना नहीं कर सकता। उन्होंने जो परिश्रम किया है हमें उनकी कुछ सहायता करनी चाहिये, अर्थात् मेहनतमें हाथ बटाना चाहिये। सब कुछ क्या वे अकेले ही करें? बुद्धदेव समझता है कि मैं बहुत बड़ा लेखक हूँ। अतएव बड़े लेखकका सम्मान मुझे मिलना ही चाहिये। मैं बहुतेरा कहता हूँ कि मैं बहुत छोटा लेखक हूँ। योरप मुझे कोई सम्मान नहीं प्रदान करेगा। इसलिये अपने अंदर कोई भरोसा नहीं पाता। वह कहता है कि तो क्या दिलीप बाबू व्यर्थ ही इतना परिश्रम कर रहे हैं? यानी फिजूल मेहनत नहीं करते। श्री अरविन्दने निश्चय ही उन्हें आशा दिलाई है। मैं कहता हूँ कि तो अरविन्द जानें।

उस दिन वशिष्ठ या बशीश्वर सेनकी अमरीकन स्त्रीने तुम्हारा 'निष्कृति'का अनुवाद देखनेके लिये विशेष अनुरोध किया है। उन्हे खबर मिली है कि उसमें श्री अरविन्दकी कलम लगी है, इसलिए इतना आग्रह है। कहती हैं कि इसकी एक प्रति वह अप्रैलमें अमेरिका ले जाकर प्रकाशित करनेकी चेष्टा करेंगी। पहले वह 'एशिया' पत्रिकाकी सम्पादिका थीं। वहाँके बहुतेरे प्रकाशकोंसे सुपरिचित हैं। मैं सोचता हूँ कि 'निष्कृति' न होकर 'श्रीकान्त' होता, तो कुछ आशा भी थी। लेकिन उस देशमें 'निष्कृति'को किस बातसे

समादर मिलेगा ? बहरहाल एक प्रति तुम मुझे भेज दो मण्टू, कमसे कम मैं पढ़ देखूँ, कैसी हुई है। बुद्धदेवने भी शायद अबतक तुम्हें लिखा होगा। तुमने जो जो चीजें भेजनेके लिये लिखा था, उन्हें भेजनेके लिये कहा है। बहुत संभव है इतने दिनोंमें तुम्हारे पास पहुँच गई हों। देखता हूँ 'निष्कृति'के फ्रान्सीसी अनुवादका इरादा भी तुममें है और तुम चेष्टा भी कर रहे हो। मुझे अपना भरोसा नहीं। पर सोचता हूँ श्री अरविन्दके आशिर्वादसे असंभव भी संभव हो सकता है। संसारमें शायद यह भी होता है।

तुम फकीर आदमी हो। फिर भी मेरे लिए तुम्हारा बहुत खर्च हो रहा है। अब बुद्धदेवके आते ही इतना मैं भेज दूँगा। बुद्धदेव लड़का बहुत पढ़ा हुआ है। संस्कृत और बनस्पतिशास्त्रका काफी अच्छा ज्ञान है। कालिजमें वह इन दोनों विषयोंको पढ़ाता है।

मण्टू, अब श्रीकान्तमें हाथ लगाओ, जिन्दा रहते इस अनुवादको आँखोंसे देख जाना चाहता हूँ।

साहाना और तुम्हारे गानेकी पुस्तक मिली और सम्हालकर अलमारीमें रख दी है। साहानाको मेरा आशीर्वाद कहना।

मैं चिट्ठीका जवाब देनेमें जितना भी आलस क्यों न करूँ तुम भूल कर भी बदला न लेना। सात आठ दिनोंके बाद हम सभी गाँव जा रहे हैं। जाते समय तुम्हें पता लिखूँगा। इसी बीच 'निष्कृति' के अनुवादकी एक प्रति कलकतेके पतेसे भेज दो। आशा है, तुम सभी अच्छे हो। मेरा स्नेह और आशीर्वाद लेना। इति।

—शरत् दादा

पी ५६६, मनोहर पुकुर, कलकत्ता
३ माघ १३४२

कल्याणीयेषु। मण्टु, तुम्हारा पोस्टकार्ड और 'बहुबल्लभ' के फारमोंका पुलिन्दा मिला। शायद तुम नहीं जानते हो कि मैं पिछले आठ नौ महिनोंसे बहुत अस्वस्थ हूँ। शय्यागत कहना भी अतिशयोक्ति नहीं होगी। पिछले जेठमें गाँवसे यहाँ आनेके रास्तेमें लू लग गई। तबसे आँख और सिरके दर्दसे

कितना परेशान हूँ, क्या बताऊँ ? आज भी अच्छा नहीं हुआ। बाकी दिनोंमें अच्छा होगा कि नहीं, नहीं जानता। इसके ऊपर बवासीरका जबरदस्त खून जाना तो है ही। (बहुत पुरानी बीमारी है) और महीने भरसे बीच बीचमें बुखार आता है। बुखारके अंदर ही मैं तुम्हें पत्र लिख रहा हूँ। गाँवहीमें रहता हूँ। बीच बीचमें कुछ अच्छा रहनेपर कलकत्ता आता हूँ। लिखना पढ़ना सब बंद है। अखबार तक। इस जीवन-भरके लिये लिखना पढ़ना अगर समाप्त हो गया हो तो शिकायत नहीं करूँगा। जितना सामर्थ्य और शक्ति थी, किया है, उससे अधिक अगर न कर सकूँ तो क्षुब्ध क्यों होऊँ। अंतरमें मैं सदा बैरागी हूँ। आगे भी वैसा ही रह सकूँ।

एक दिन बुद्धदेव यहाँ चर्चा कर रहा था कि मंटु बाबूका 'दोला' बहुत अच्छा हुआ है। सुन कर अचरज नहीं हुआ। मैं मन ही मन जानता हूँ कि मंटुके उपन्यास दिन पर दिन अच्छेसे अच्छे होंगे ही। अकृत्रिम साधनाका फल कहाँ जायेगा ? इसके अलावा उत्तराधिकारमें कलाकारका हृदय मिला है, जितना विशाल उतना ही भद्र और उतना ही पर दुःखकातर। तुम्हारे रसिक मनका परिचय बचपनसे ही तुम्हारे संगीतमें, गुणियोंके प्रति तुम्हारे नितान्त अनुरागमें, तुम्हारे नाना कामोंमें मुझे मिला है। इसी लिये तुम्हारे प्रति मेरा स्नेह भी अकृत्रिम है। बाहरके किसी घात-प्रतिघातसे वह मलिन नहीं होनेका। तुम्हारी रचनाके बारेमें बहुत दिन पहले जो शुभ कामनाकी थी, आज वह सफल हो चली है। मेरे लिए यह बड़े आनन्दकी बात है। फिर आशीर्वाद देता हूँ कि जीवनमें तुम सुखी होओ, सार्थक बनो।

बुद्धदेव वसुके 'बासरघर'के संबंधमें रवीन्द्रनाथने क्या लिखा है, मैंने नहीं देखा। बुद्धदेवने अगर कहा है कि रवीन्द्रनाथ मुझसे बहुत बड़े उपन्यास-लेखक हैं, तो यह सच ही कहा है मंटु। अपना मन तो जानता है कि यह सत्य है, परम सत्य है।

इसके अलावा और एक बात यह है कि मुझसे कौन बड़ा है, कौन छोटा है, इसे लेकर यथार्थमें मेरे मनमें कोई आक्षेप, कोई बेचैनी नहीं है।...... अगर कहते कि मेरी कोई भी पुस्तक उपन्यास कहलानेके योग्य नहीं है, तो

शायद उससे भी सामयिक वेदनाके सिवा और कुछ नहीं होता। शायद विश्वास करना कठिन होगा और ऐसा लगेगा कि मैं अत्यधिक दीनता प्रकट कर रहा हूँ लेकिन इसीकी ही साधना मैंने आजीवन की है। इसीलिये किसी आक्रमणका प्रतिवाद नहीं करता। जवानीमें एक आध बार रवीन्द्रनाथके विरुद्ध किया था सही, लेकिन वह मेरी प्रकृति नहीं विकृति थी। नाना कारणोंसे ही शायद गलती कर बैठा था।

स्वास्थ्य बर्बाद हो गया है। ऐसा नहीं लगता कि अब अधिक दिनों तक रहना पड़ेगा। इस थोड़ेसे समयमें इसी तरहका मन लेकर रहना चाहता हूँ। जवानीकी कुछ भूलोंके लिये पश्चात्ताप होता है। मेरी एक बात याद रखना, मण्टु, तुम किसी भी कारणसे किसीको व्यथा न देना। तुम्हारा काम ही तुम्हें सफलता देगा।...

अपने मकानोंको बेचे दे रहे हो! लेकिन क्या इसकी कोई जरूरत है? इस देशके सारे सम्बन्धोंको तुम छिन्न किए दे रहे हो, सोचने पर बड़ा क्लेश होता है।

मेरा चिट्ठी लिखना सदा अस्तव्यस्त होता है, विशेष करके इस पीड़ित दशामें। अगर कहीं कोई असंलग्न बात लिख दी हो तो खयाल न करना। अगर कुछ अच्छा रहा तो तुम्हारी दोनों ही पुस्तकें ध्यानसे पढ़ूँगा। इति। शुभाकांक्षी—श्री शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय।

जेठ (?) १३४०.

मण्टु, श्रीकान्त चतुर्थ पर्वके सम्बन्धमें कुछ अपनी बात बतलाऊँ। मेरी इच्छा थी साधारण सहज घटनाओंको लेकर इस पर्वको समाप्त करूँगा और नाना दिशाओंसे थोड़ी-सी बातों तथा संयमके अन्दरसे कितने रसका सृजन होता है उसकी परीक्षा करूँगा। उपादान या उपकरणका प्राचुर्य नहीं, घटनाकी असाधारणता नहीं, बल्कि अत्यन्त साधारण ग्राम्य जीवनके प्रत्येक दैनन्दिन मामलेको लेकर यह पुस्तक समाप्त होगी। विस्तार नहीं रहेगा, गहराई रहेगी। विस्तृत विवरण नहीं, केवल इशारा रहेगा, जो रसिक हैं, उनके

आनन्दके लिये। उपन्यास साहित्यको जितना समझता हूँ उससे इतनी आशा रखता हूँ कि अगर और कुछ अच्छा नहीं बन पड़ा हो, तो कमसे कम असंयत होकर उच्छृंखलताका स्वरूप नहीं प्रकट कर बैठा।

सावित्रीके सम्बन्धमें 'पुष्पपत्र' (बैसाख–जेठ १३४०) 'बुद्धदेव और यथार्थ वीर' शीर्षक निबन्धमें जो कुछ लिखा है, उसे पढ़ा। तुमने ठीक ही लिखा है। लेकिन बहुतेरे इस बातको क्यों भूल जाते हैं कि सावित्री यथार्थमें नौकरानी किस्मकी स्त्री नहीं है। पुराणमें लिखा है कि एक बार लक्ष्मी देवीने भी मुसीबतमें पड़ कर एक ब्राह्मणके घरमें दासीका काम किया था। सभी सम्प्रदायोंकी तरह गणिकाओंमें भी ऊँची नीची हैं। गणिकाके निकट जो गणिका दासी बनी हुई है, उसका और उसकी मालकिनका चाल चलन एक नहीं भी हो सकता है। इनको देखपाना सहज है, लेकिन इनको जाननेके रास्तेमें अनेक बाधाएँ हैं।

तुम्हारी यह बात बहुत ठीक है कि जो निर्विकार होकर स्त्रीजातिकी ग्लानिके प्रचार करनेको ही यथार्थवाद समझते हैं, उनमें आदर्शवाद तो है नहीं, यथार्थवाद भी नहीं है। है केवल गुस्ताखी—न जानते हुए अहंकार। महिलाओंके विरुद्ध कड़ी कड़ी बातें लिखना बहादुरी हो सकती है, लेकिन उस पथपर चलकर सच्चे साहित्यका सृजन नहीं हो सकता। (पाठशाला, भाद्रपद १३५०)

१४

[श्री भूपेन्द्रकिशोर रक्षित रायको लिखित]

१० ज्येष्ठ १३३६

भूपेन, एक मासिक पत्रिकाके तुम संपादक हो। Catchwords का मोह कहीं तुम्हें वशमें न कर ले। क्योंकि इस बातको तुम्हें कदापि नहीं भूलना चाहिये कि विप्लव और विद्रोह एक वस्तु नहीं है। क्या कहीं देखा है कि

विप्लवसे पराधीन देश स्वाधीन हुआ है ? इतिहासमें कहीं नज़ीर है ? विप्लवके अन्दरसे स्वतन्त्र देशमें ही सरकारका रूप अथवा सामाजिक नीति परिवर्तित की जा सकती है। लेकिन मैं नहीं समझता कि विप्लवसे पराधीन देशको स्वाधीन किया जा सकता है। इसका कारण क्या है, जानते हो ? विप्लवमें वर्गयुद्ध है, विप्लवमें गृहयुद्ध है;—आत्मकलह और गृहविच्छेद है। आत्मकलह और गृहविच्छेदसे और कुछ भी क्यों न किया जा सके देशके परम शत्रुको पराजित नहीं किया जा सकता। विप्लव एकताका विरोधी है। (वेणु, आषाढ़ १३३६)

सामताबेड, पाणित्रास
जिला हावड़ा
१० चैत्र १३३६

भूपेन,—नव वर्षकी सूचनामें तुम्हारे वेणुको मैं हृदयसे आशीर्वाद देता हूँ। जिस जातिका साहित्य नहीं है उसकी दरिद्रता कितनी बड़ी है, इस पुराने सत्यको वर्त्तमान कालमें नाना उत्तेजनाओंके कारण प्रायः हम भूल जाते हैं। उसका फल यह हुआ है कि हीनताका अन्धकार जातीय जीवनमें निरन्तर बढ़ता ही जा रहा है। समाजमें कूड़ा बहुत जमा हो गया है। दुःखकी सीमा नहीं, इस बातको हम सभी जानते हैं। लेकिन तुम जो कई लड़के इस छोटी-सी पत्रिकाको केन्द्र बनाकर एकत्र हुए हो, तुम लोगोंने नर-नारीकी यौन समस्याको ही सारी वेदनाओंके ऊपर नहीं रखा है, यही मेरे लिये सबसे अधिक आनन्दका कारण है। पराधीनताका दुःख ही हमारी सभी वेदनाओंसे बड़ा होकर तुम्हारी इस पत्रिकामें बार-बार आता है। प्रार्थना करता हूँ इस पत्रिकामें इस नीतिका कोई व्यतिक्रम न हो। (वेणु, वैसाख १३३७)

सामताबेड़, पाणित्रास
जिला हावड़ा

परम कल्याणीयेषु। भूपेन, कुछ दिन पहिले तुम्हारी चिट्ठी मिली। लेकिन

इसके बाद ही कुमिल्ला जाना पड़ा, इस लिए जवाब देनेमें देर हो गई। कुछ सोचना मत। कब तुम लोग लौटोगे और फिर कब तुम लोगोंसे मुलाकात होगी, इस निर्जन पल्ली-भवनमें बैठा अकसर सोचता रहता हूँ। साहित्यको लेकर तुम लोगोंसे परिचय हुआ है और अपने देशको तुम अन्तरसे प्यार करते हो, यही जानता हूँ। लेकिन किस अपराधमें बन्द हो समझमें नहीं आता। प्रार्थना करता हूँ शीघ्र रिहा होकर फिर साहित्यमें लौट सको।

'शेष प्रश्न' उपन्यास तुम्हें इतना अच्छा लगा है जानकर बड़ी खुशी हुई। इसमें बहुतेरे सामाजिक प्रश्नोंकी आलोचना है, पर समाधानका भार तुम लोगोंपर है। भविष्यकी इस कठिन जिम्मेदारीकी संभावनाने ही शायद तुम लोगोंको बहुत आनन्द दिया है। मगर मेरी धारणा है कि यह किताब बहुतोंको निराश करेगी, उन्हें किसी भी तरहका आनन्द नहीं मिलेगा। एक तो गल्पांश बहुत कम है, बड़ी तेजीसे समय काटना या नींदकी खुराककी तरह निश्चिन्त हो आरामसे अधमुँदी आँखोंसे आनन्दानुभव करना नहीं हो सकता है। इसके अच्छे लगनेकी बात नहीं। फिर भी यह सोचकर लिखा था कि कुछ लोग तो समझेंगे और मेरा काम इसीसे चल जायगा। सभी प्रकारके रस सभीके लिए नहीं होते। अधिकारी-भेदको मैं मानता हूँ।

और एक बात याद थी कि वह अति-आधुनिक साहित्य है। सोचा था इस दिशामें एक संकेत छोड़ जाऊँगा। बूढ़ा हो गया हूँ, लिखनेकी शक्ति अस्तंगत-प्राय है। फिर भी सोचता हूँ कि आगामी कलके तुम लोगोंको शायद इसका आभास मिल जायगा कि गंदा किए बगैर ही अति-आधुनिक-साहित्य लिखा जा सकता है। केवल कोमल पेलव रसानुभूति ही नहीं, बुद्धिके लिए बल-कारक भोजन उपस्थित करना भी अति-आधुनिक-साहित्यका एक बड़ा काम है। इसके बाद तुम लोग जब लिखोगे तो तुम्हें भी बहुत पढ़ना पड़ेगा, बहुत सोचना पड़ेगा। केवल मनोरंजनके हल्के बोझको देनेसे ही छुटकारा नहीं मिलेगा।

जेलमें हो, तुम्हारे पास बहुत समय है। तुम्हें मेरा यही आदेश है कि इस समयको वृथा नष्ट न करना, यह निर्जन-वास जिसमें तुम्हारे बादके जीवनमें कल्याणका द्वार खोल दे। बहुतेरे लोगोंके बीच मनुष्यको पहचानना सीखना।

मनुष्यके स्वरूपको पहचानना ही साहित्यकी यथार्थ सामग्री है। इस सत्यको कभी भी न भूलना।

बुढ़ापेमें मेरे शरीरको जैसा रहना चाहिए वैसा ही है। मजेमें रहो, निरापद रहो, यही आशीर्वाद देता हूँ। इति। ४ जेठ १३३८

शुभानुध्यायी
श्री शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय

१५

[श्री कृष्णेन्दु नारायण भौमिकको लिखित]

कल्याणीयेषु। पत्रिकाके संचालनके बारेमें मेरी राय जानना चाहते हो, लेकिन मैंने तो कभी पत्रिकाका संचालन किया नहीं, अतएव वास्तविक अनुभव मुझे नहीं है। पर प्रतिमास बहुतेरी पत्रिकाएँ पढ़ता हूँ, इससे यही लगता है कि मासिक पत्रिकाको बहुजनोंमें प्रिय करनेके लिए सबसे बड़ी आवश्यकता होती है रचनाओंकी स्निग्धता और संयमकी। उग्रतासे अभिभूत करनेके संकल्पको लेकर जो कुछ लिखा जाता है, ज़रा ध्यानसे देखनेपर पता चल जायगा कि उसकी पोशाक तथा बाहरका अतिरेक स्वल्पकालके लिए पाठकके चित्तको बिह्वल कर देनेपर भी वह स्थायी तो होता ही नहीं बल्कि प्रतिक्रियासे अवसादग्रस्त कर देता है। कहानीमें हो या और किसी चीज़में, अगर देखते हो कि बातें लेखककी अपनी अनुभूतिके रससे सत्य और विशुद्ध होकर रचनामें नहीं आई हैं तो समझ लेना कि उसके भाव और भाषाके आडम्बर चाहे जितने चका-चौंधा देनेवाले और मनुष्यकी दृष्टिको आकर्षित करनेवाले क्यों न हो, अन्तःसार-शून्य हैं, वे टिक नहीं सकेंगे।

इनटेलेक्चुअल (बुद्धिवादी) कहानी नामक एक बात आजकल प्रायः सुनता हूँ, लेकिन उसका स्वरूप कभी नहीं देखा या देखनेपर भी पहचान नहीं सका। उस दिन अचानक एक कहानी पढ़ी थी। समाप्त करनेपर ऐसा लगा था, मानो लेखकके पाण्डित्यके बोझसे रचना पथके बीच ही मुँहके बल गिर पड़ी है।

इस वस्तुको पत्रिकामें कभी प्रश्रय मत देना। पर ऐसी बात भी न सोचना कि कहानीमें बुद्धि-शक्तिकी छाप रहना ही दूषणीय है, हृदय-वृत्तिके अपरिमित बाहुल्यसे लेखकका अहमक बनना ही जरूरी है।

('स्वदेश' आश्विन १३४०)

१६

[श्री अतुलानन्द रायको लिखित]

कल्याणीयेषु। श्रावणकी (१३४०)की 'परिचय' पत्रिकामें श्रीमान् दिलीप-कुमार रायको लिखित रवीन्द्रनाथके 'पत्र-साहित्यकी मात्रा' के विषयमें तुमने मेरी राय जाननी चाही है। यह पत्र व्यक्तिगत होनेपर भी जब, जन साधारणमें प्रकाशित हुआ है, तब ऐसा अनुरोध शायद किया जा सकता है। लेकिन कितनी ही चार पृष्ठकी लम्बी चिट्ठियोंकी अंतिम पंक्तिमें 'कुछ रुपये भेजने' की तरह अंतिम कई पंक्तियोंका वास्तविक कथन अगर यही है कि यूरोप अपनी मशीनों धन-दौलत-तोप-बन्दूक मान-इज्जतके साथ शीघ्र ही डूबेगा, तो अत्यन्त परितापके साथ यही समझूँगा कि उम्र तो बहुत हुई, उस वस्तुको क्या आँखों देख जानेका मौका मिल सकेगा!

पर इनके अलावा कविने और भी जिन लोगोंके बारेमें आशा छोड़ दी है, तुम लोगोंको संदेह होता है कि उनमें एक मैं भी हूँ। असंभव नहीं हैं। इस निबन्धमें कविकी शिकायतका विषय है कि वे 'मतवाले हाथी हैं,' 'वे 'बकवास करते हैं' 'पहलवानी करते हैं' 'कसरत करामात दिखाते हैं' 'प्राब्लेम साल्व करते हैं', अतएव उनकी इत्यादि इत्यादि।

ये बातें जिस किसीको क्यों न कहीं जायँ, सुन्दर भी नहीं है और कानोंको प्रिय भी नहीं। श्लेष विद्रूपका आमेज मनमें एक प्रकारका इरिटेशन् (चिढ़-चिढ़ापन) ला देता है। उससे कलाका उद्देश्य व्यर्थ हो जाता है, श्रोताका मन भी खिन्न हो जाता है। यद्यपि क्षोभ प्रकट करना जिस प्रकार अनावश्यक

है, प्रतिवाद भी उसी प्रकार व्यर्थ है। किसकी बातोंको तोतेकी तरह दुहरा दी, कहाँ पहलवानी की, कौन-सा 'खेल' दिखलाया, क्रुद्ध कविसे इन सारी बातोंको पूछना अप्रासंगिक है। मेरे बचपनकी बात याद आती है। खेलके मैदानमें किसीने कह भर दिया कि अमुक मैलेमें बूड़ गया है। फिर क्या कहना, कहाँ बूड़ा, किसने कहा, किसने देखा, वह मैला नहीं है गोबर है,—सब कुछ वृथा है। घर आनेपर माताएँ बगैर नहलाए, सिरपर बगैर गंगाजल छिड़के घरमें घुसने नहीं देतीं। क्योंकि वह मैलेमें बूड़ गया है! यह भी हमारी वही दशा है।

क्या 'साहित्यकी मात्रा' क्या दूसरे निबन्ध, इस बातको अस्वीकार नहीं करता कि कविकी इस प्रकारकी अधिकांश रचनाओंको समझनेकी बुद्धि मुझमें नहीं है। उनकी उपमा उदाहरणोंमें कल-पुर्जे आते हैं, हाट-बाजार, हाथी-घोड़े, जन्तु-जानवर आते हैं। समझमें नहीं आता मनुष्यकी सामाजिक समस्याओंमें नर-नारीके पारस्परिक सम्बन्धके विचारमें वे क्यों आते हैं और आकर किस बातको सिद्ध करते हैं? सुननेमें अच्छे लगने पर ही तो वे तर्क नहीं बन जाते।

एक दृष्टान्त दूँ। कुछ दिन पहले हरिजनोंके प्रति अन्यायसे व्यथित होकर उन्होंने प्रवर्तक-संघके मति बाबूको एक पत्र लिखा था। उसमें शिकायत की थी कि ब्राह्मणीकी पाली हुई बिल्ली जब जूँठे मुँह उसकी गोदमें जा बैठती है, तो इससे उसकी पवित्रता नष्ट नहीं होती—वह आपत्ति नहीं करती। बहुत संभव है नहीं करती हो, लेकिन इससे हरिजनोंको कौन-सी सुविधा हुई? कौन-सी बात सिद्ध हुई! बिल्लीके तर्कसे ब्राह्मणीको यह तो नहीं कहा जा सकता कि बिल्ली जैसी अति-निकृष्ट-जीव तुम्हारी गोदमें जा बैठी तो तुमने आपत्ति नहीं की, अतएव, अति उत्कृष्ट जीव मैं भी तुम्हारी गोदमें बैठूँगा, तुम आपत्ति नहीं कर सकतीं। बिल्ली क्यों गोदमें बैठती है, चींटी क्यों थालीपर चढ़ती है, इन तर्कोंको पेश करके मनुष्यके प्रति मनुष्यके न्याय अन्यायका फैसला नहीं किया जा सकता। ये उपमाएँ सुननेमें अच्छी लगती हैं, देखनेमें चकाचौंध लगा देती हैं, लेकिन परखने पर जो दाम लगता है वह अकिंचित्कर होता है। विराट् फैक्टरीकी अनगिनित वस्तु-

ओंके उत्पादनकी अपकारिता दिखाकर मोटा उपन्यास भी अत्यन्त क्षतिकर है, यह बात सिद्ध नहीं की जा सकती।

आधुनिक कालमें कल-कारखानोंकी नाना कारणोंसे बहुतेरे लोग निन्दा करते है, रवीन्द्रनाथने भी की है—इसमें दोष नहीं। बल्कि यही फैशन हो गया है। बहु-निन्दित वस्तुके संस्पर्शमें जो लोग इच्छासे या अनिच्छासे, आगए हैं, उनके सुख-दुःखोंके कारण भी जटिल हो गये हैं—जीवन-यात्राकी प्रणाली भी बदल गई है। गाँवके किसानोंसे उनका जीवन हूबहू नहीं मिलता है। इस बातको लेकर दुःख किया जा सकता है, लेकिन फिर भी अगर कोई इनकी नाना विचित्र घटनाओंको लेकर कहानी लिखता है तो वह साहित्य क्यों नहीं होगा? कवि भी नहीं कहते हैं कि नहीं होगा। उनकी आपत्ति है केवल साहित्यकी मात्राके उल्लंघनमें। किन्तु इस मात्राका निश्चय किस बातसे होगा? झगड़ेसे या कड़वी बातचीतसे? कविने कहा है—निश्चय होगा साहित्यकी चिरन्तन मूल नीतिसे। किन्तु यह 'मूल नीति' लेखककी बुद्धिके अनुभव और स्वकीय रसोपलब्धिके आदर्शके सिवा और कहीं है क्या? चिरन्तनकी दोहाई शरीरके जोरसे दी जा सकती है और किसी तरह नहीं। वह मृगतृष्णा है।

कविने कहा है, 'उपन्यास साहित्यकी भी वही दशा है। मनुष्यके प्राणोंका रूप विचारोंके स्तूपके नीचे दब गया है।" लेकिन प्रत्युत्तरमें अगर कोई कहता है, "उपन्यास-साहित्यकी वह दशा नहीं है, मनुष्यके प्राणोंका स्वरूप विचारके स्तूपके नीचे दब नहीं गया है, विचारके सूर्यालोकसे उज्ज्वल हो उठा है" तो उसे कौन-सी नजीर देकर चुप किया जायगा? और इसीके साथ एक बात आजकल प्रायः और सुनाई पड़ती है, रवीन्द्रनाथने भी उसको यह कहकर बढ़ावा दिया है कि "अगर मनुष्य कहानीके अड्डेमें आता है, तो कहानी ही सुनना चाहेगा, अगर वह प्रकृतिस्थ है।" बातको स्वीकार करते हुए भी अगर पाठक कहें—हाँ, हम प्रकृतिस्थ हैं, लेकिन समय बदला है और उम्र भी बढ़ी है। अतएव राजकुमार तथा मेढ़क-मेढ़कीकी कहानीसे हमारा मन नहीं भरता है, तो उनका उत्तर दुर्विनीत होगा, ऐसा मैं नहीं समझता। वे अनायास ही कह सकते हैं कि कहानीमें, विचार-शक्तिकी छाप

रहनेसे ही वह परित्यज्य नहीं होती या विशुद्ध कहानी लिखनेके लिए लेखकको विचार-शक्तिके विसर्जित करनेकी भी आवश्यकता नहीं।

कविने महाभारत तथा रामायणका उल्लेख करके भीष्म और रामके चरित्रोंकी आलोचना करके दिखाया है कि, 'बकवास'की खातिर वे दोनों चरित्र मिट्टीमें मिल गए हैं। इस बातकी मैं आलोचना नहीं करूँगा, क्योंकि वे दोनों ग्रंथ केवल काव्यग्रंथ ही नहीं, धर्मग्रंथ तो हैं ही, शायद इतिहास भी हैं। वे दोनों चरित्र साधारण उपन्यासके बनावटी चरित्र मात्र नहीं भी हो सकते हैं, अतएव, साधारण काव्य-उपन्यासके माप-दण्डसे नापनेमें मुझे झिझक होती है।

पत्रमें इन्टिलेक्ट शब्दके कितने ही प्रयोग हैं। ऐसी लगता है मानो कविने विद्या तथा बुद्धि दोनों अर्थोंमें इस शब्दका प्रयोग किया है। प्राब्लेम शब्द भी वैसा ही है। उपन्यासमें कितने ही प्रकारके प्राब्लेम रहते हैं, व्यक्तिगत, नीतिगत, सामाजिक, सांसारिक, इसके अलावा कहानीका अपना प्राब्लेम, जो प्लाटसे सम्बन्ध रखता है। इसीकी गाँठ सबसे कठिन होती है। कुमारसंभवका प्राब्लेम, उत्तरकाण्डमें रामचंद्रका प्राब्लेम, डाल्स हाउसमें नोराका प्राब्लेम अथवा योगायोगमें कुमुका प्राब्लेम एक ही जातिके नहीं हैं। 'योगायोग' पुस्तक जब 'विचित्रा'में प्रकाशित हो रही थी और अध्यायके बाद अध्यायमें कुमुने जो हंगामा खड़ा किया था, मैं तो समझ ही नहीं पाता था कि उस दुर्द्धर्ष प्रबल पराक्रान्त मधुसूदनसे उसकी रस्साकसी समाप्त कैसे होगी ? लेकिन कौन जानता था कि समस्या इतनी सहज थी और लेडी डाक्टर आकर क्षणभरमें उसका फैसला कर देगी। हमारे जलधरदादा भी प्राब्लेम बरदाश्त नहीं कर पाते हैं। बड़े खफा रहते हैं। उनकी एक पुस्तकमें इसी तरहके एक आदमीने बड़ी समस्या पैदा कर दी थी, लेकिन उसका फैसला दूसरी तरहसे हो गया। फुफकार कर एक जहरीला साँप निकला और उसे काट लिया। दादासे पूछा था कि यह क्या हुआ ? उन्होंने उत्तर दिया था कि, क्यों, क्या साँप किसीको नहीं काटता ?

अंतमें और एक बात कहनी है। रवीन्द्रनाथने लिखा है, "इबसेनके नाटकोंका इतने दिनोंतक कुछ कम आदर नहीं हुआ है, लेकिन क्या अब

उनका रंग फीका नहीं हो गया है ? कुछ दिनोंके बाद क्या वह दिखाई पड़ेगा ? " नहीं पड़ सकता है, लेकिन फिर भी यह अनुमान है प्रमाण नहीं। बादमें किसी समय ऐसा भी हो सकता है कि इब्सेनका पुराना आदर फिर लौट आवे। वर्तमानकाल ही साहित्यका चरम हाइकोर्ट नही है।

१७

[अविनाशचन्द्र घोषालको लिखित]

२५ श्रावण, १३४१

कल्याणीयेषु। वातायनके प्रत्येक अंकको मैंने ध्यानसे पढ़ा है। आलस य-उपेक्षासे कभी दूर नहीं रखा।

सभी विषयोंमें एकमत हो सका हूँ ऐसा नहीं, लेकिन अकारण विद्वेष या व्यक्तिगत ईर्षाके आक्रमणसे किसी आलोचनाको कभी कलंकित होते देखा है ऐसा नहीं लगता। यह आनन्दकी बात है। लेकिन अगर ऐसा कभी हो भी गया हो जो मेरी नजरोंमें नहीं आया, तो उसके सम्बन्धमें आज यही बात कहूँगा कि जो हो गया सो हो गया, लेकिन नूतन वर्षके प्रारम्भसे तुम लोगोंको सर्वदा यह याद रखना चाहिए कि रचनामें असहिष्णुता तो बरदाश्त की भी जा सकती है, पर क्रूरता, नीचता, असत्य निन्दासे मनुष्यको हीन सिद्ध करनेके प्रयासको पाठक-समाज अधिक दिनोंतक सहन नहीं कर सकता है, उसकी नजरोंमें लेखक स्वयं ही धीरे धीरे छोटा होता जाता है, उसकी कलई खुल जाती है। तब पत्रिकाकी मर्यादा नष्ट होती है, उद्देश्य शिथिल हो जाता है, आलोचना निष्फल परिश्रम हो जाती है,—सभी प्रकारसे उसके कल्याणका सामर्थ्य क्षीण हो जाता है। इससे बढ़कर पत्रिकाकी कोई दूसरी अवनति नहीं। केवल असत्य या अन्यायके लिए ही नहीं, इस बातको निश्चित जानना कि कुरूपता कभी दीर्घजीवी नहीं होती। ('वातायन,' २५ श्रावण, १३४१)

कल्याणीयेषु। लक्ष्य कर रहा हूँ कि देशकी साप्ताहिक पत्रिकाओंको क्रमशः लोगोंकी उत्सुक और उत्कंठ दृष्टि प्राप्त हो रही है। अर्थात् मनुष्य दैनिक प्रयोजनमें इनकी आवश्यकता भी अब अनुभव कर रहा है। आनन्दकी बात है। लेकिन इस प्रतिष्ठाके आसनको केवल दखल करनेसे ही नहीं चलेगा, कामके अन्दरसे अपनी मर्यादा प्रतिदिन सिद्ध करनी होगी, निरन्तर याद रखना होगा कि तुम्हारी कर्मशीलता साधारण लोगोंके सौभाग्य और कल्याणको समृद्ध बना रही है। और किसी दूसरे उपायसे अपने अस्तित्वको कायम रखना पत्रके लिए केवल व्यर्थता ही नहीं विडम्बना भी है।

तुम्हें बचपनसे जानता हूँ। तुमने अपने आदर्श अपने अनुभवकी मेरे सामने न जाने कितनी बार चर्चा की है, छोटे भाईकी तरह उपदेश माँगा है। जीवन-यात्रामें इन सबको तुम भूल न जाओ, यही मेरी इच्छा है।

पत्रिकाके चलानेका काम सिर्फ दायित्वका ही नहीं है, नाना प्रकारसे विघ्नमय है, भिन्न भिन्न प्रकारकी प्रतिकूलताओंका सामना करना पड़ता है। निस्संदेह रूपसे अधिकांश ही सामयिक हैं तथापि संयम और सहनशीलताकी अत्यन्त आवश्यकता है। जानता हूँ, निडर आलोचना साप्ताहिकका प्राण है, कर्त्तव्यविमुखता अपराध है। फिर भी कहता हूँ कि इससे भी कहीं अधिक मूल्यवान् तुम्हारा अपना चरित्र और मर्यादा है। असौजन्यसे और बुरी बातोंसे अपने वक्तव्यको कभी कलुषित न करना। किसीको छोटा बनानेके लिए नहीं, बड़ा बनानेके उद्यममें ही तुम्हारी प्रबुद्ध शक्ति निरन्तर लगी रहे, यही प्रार्थना करता हूँ। प्रगतिके पथपर तुम्हारी अप्रतिहत विजय होकर ही रहेगी। इति।

७ श्रावण १३४२

शुभाकांक्षी—

श्री शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय

१८

[श्री मतिलाल रायको लिखित]

१७ आश्विन, १३४१

परम श्रद्धास्पद।...आचार्योंने कहा है, कलाकी साधनाका मूल सूत्र है सत्य, शिव, और सुन्दर। अर्थात् साधना सत्यपर आधारित हो, सुन्दरपर आधारित हो और उसका फल कल्याणमय हो। जो विज्ञानके साधक हैं (तत्त्वज्ञान नहीं कह रहा हूँ,—साधारण सांसारिक अर्थमें कह रहा हूँ) अर्थात्, जो वैज्ञानिक हैं, उनका एक मात्र मंत्र है सत्य। साधनाका फल सुन्दर—असुन्दर, कल्याणकर—अकल्याणकर हो—किसीमें उनकी आसक्ति नहीं। हो तो वाह वाह, नहीं हो तो भी वाह वाह।

लेकिन साहित्य-सेवामें बहुत दिनोंसे व्रती रहकर निरन्तर अनुभव करता हूँ, कि यहाँ सत्य और सुन्दरमें पग-पगपर विरोध उठ खड़ा होता है। संसारमें जो घटनामें सत्य है, साहित्यमें वह सुन्दर नहीं भी हो सकता है, और जो सुन्दर है, वह हो सकता है साहित्यमें सोलहों आने मिथ्या है। जिसे सत्यके रूपमें जानता हूँ, उसे साकार मूर्त रूप देने जाकर देखता हूँ वह बीभत्स कदाकार हो जाता है; दूसरी ओर असत्यका वर्जन करनेपर भी सुन्दरका रूप नहीं मिलता है। मंगल-अमंगल भी इसी प्रकारका है। साहित्यमें यह प्रश्न अप्रासंगिक है, इसे स्वीकार किए बगैर भी तो नहीं रहा जाता।

पूछता हूँ, सत्य अगर सुन्दरका विरोधी होता है, कल्याण अकल्याण गौण होता है, साहित्य-साधनामें इस समस्याका समाधान किस प्रकारसे होगा?

भवदीय—श्री शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय

('प्रवर्त्तक,' फाल्गुन, १३४४)

११

[श्री पशुपति चट्टोपाध्यायको लिखित]

तुम्हारा प्रश्न है—मैं नाटक क्यों नहीं लिखता ? शायद तुम्हारे मनमें यह जिज्ञासा दो कारणोंसे आई है। प्रथम, नाट्यकार और दूसरे ग्रंथकारों द्वारा रचित उपन्यासोंके नाट्यरूपदाता श्रीयुक्त योगेश चौधरीने हालमें 'वातायन' पत्रिकामें बंगला नाटकके सम्बन्धमें जो मन्तव्य प्रकट किया है, उसे तुम पूरी तरह नहीं मान सके और दूसरी बात है, तुम निरन्तर जिन नाटकोंका अभिनय देखा करते हो, उनके भाव, भाषा, चरित्रगठन इत्यादिको विचारकर देखनेपर तुम्हारे मनमें यह बात आई है कि शरत्चन्द्र नाटक लिखे तो शायद रंगमंचके चेहरेमें कुछ परिवर्त्तन हो सकता है।

तुम्हारे प्रश्नके उत्तरमें मेरी पहली बात यह है कि मैं नाटक नहीं लिखता। इसका कारण है मेरी अक्षमता। दूसरी, इस अक्षमताको अस्वीकार करके अगर नाटक लिखता हूँ तो मेरी मजूरी नहीं पोषायगी। यह मत समझना कि केवल रुपएकी दृष्टिसे ही यह लिख रहा हूँ। संसारमें उसकी आवश्यकता है, लेकिन एकमात्र आवश्यकता नहीं, इस सत्यको एक दिन भी नहीं भूलता हूँ। उपन्यास लिखनेपर मासिक पत्रिकाओंके सम्पादक साग्रह उसे ले जायँगे, उपन्यास छापनेके लिए प्रकाशकोंकी कमी नहीं होती, कमसे कम अबतक नहीं हुई है और उस उपन्यासको पढ़नेवाले भी मिलते रहे हैं। कहानी लिखनेके नियमोंको मैं जानता हूँ। कमसे कम 'सिखा दीजिए' कहकर किसीका दरवाजा खटखटानेकी दुर्गति नहीं हुई है। लेकिन नाटक ? रंगमंचके अधिकारी ही इसके अंतिम हाईकोर्ट हैं। सिर हिलाके अगर कहते हैं कि इस जगह ऐकूशन कम है,—दर्शक नहीं स्वीकार करेंगे, या यह नाटक नहीं चल सकता, तो उसे चलानेकी कोई सूरत नहीं। उन्हींकी राय इस विषयमें अंतिम है। क्यों कि, वे विशेषज्ञ हैं। रुपया देनेवाले दर्शकोंकी एक-एक बातको वे जानते हैं। अतएव इस मुसीबतमें खामख्वाह उस पड़नेमें द्विधा होती है।

नाटक शायद मैं लिख सकता हूँ। कारण, नाटककी जो अत्यन्त प्रयोजनीय वस्तु है—जिसके अच्छी नहीं होनेसे नाटकका प्रतिपाद्य किसी भी तरह दर्शकके हृदयमें प्रवेश नही करता है—उस कथोपकथनको लिखनेका अभ्यास मुझे है। बात कैसे कहनी चाहिए, कितनी सरल बनाके कहनेसे वह मनपर गहरा असर करती है, इस कौशल्यको नहीं जानता, ऐसा नहीं। इसके अतिरिक्त अगर चरित्र या घटना-निर्माणकी बात कहते हो, तो उसे भी कर सकता हूँ, ऐसा मुझे विश्वास है। नाटकमें घटना या सिचुएशन तैयार करना पड़ता है चरित्र-सृजनके लिए ही। चरित्र-सृजन दो तरहसे हो सकता है:—एक है, प्रकाश अर्थात् पात्र-पात्री जो है, उसीको घटना-परम्पराकी सहायतासे दर्शकोंके सम्मुख उपस्थित करना। और दूसरा है—चरित्रका विकास अर्थात् घटना-परम्पराके अन्दरसें उसके जीवनमें परिवर्तन दिखाना। वह अच्छाईकी ओर हो सकता है और बुराईकी ओर भी। मान लो, कोई आदमी बीस साल पहले विलसन होटलमें खाना खाता था, झूठ बोलता था और दूसरे बुरे काम भी करता था। आज वह धार्मिक वैष्णव है—बंकिमचन्द्रके शब्दोंमें पत्तलपर मछलीका रस गिर जाता है तो उसे हाथसे पोंछ देता है। फिर भी हो सकता है कि यह उसका दिखावटीपन न हो, सच्चा आन्तरिक परिवर्तन हो। हो सकता है बहुतेरी घटनाओंके आवर्त्तमें पड़कर, दश-पाँच भले आदमियोंके सम्पर्कमें आकर उनसे प्रभावित होकर आज वह सचमुच ही बदल गया हो। अतएव वह बीस वर्ष पहले जो था वह भी सत्य है और आज जो हो गया है वह भी सत्य है। लेकिन जैसे-तैसे करनेसे काम नहीं चलेगा—नाटकके अन्दरसे, रचनाके अन्दरसे पाठक या दर्शकके सम्मुख इसे यथार्थ बनाना होगा। उन्हें ऐसा नहीं लगना चाहिए कि रचनामें इस परिवर्त्तनका कारण कहीं ढूँढ़नेपर भी नहीं मिलता है। काम कठिन है। और एक-बात। उपन्यासकी तरह नाटकमें लचीलापन नहीं है, नाटकको एक निश्चित समयके बाद आगे नहीं बढ़ने दिया जा सकता। एकके बाद दूसरी घटनाको सजा कर नाटकको दृश्यों या अंकोंमें विभाजित करना,—वह भी चेष्टा करने पर शायद दुःसाध्य नहीं होगा। लेकिन सोचता हूँ, करके क्या होगा? नाटक जो लिखूँगा, उसे मंचस्थ करेगा कौन? शिक्षित समझदार अभिनेता अभिनेत्री कहाँ हैं? नाटककी नायिका बनेगी, ऐसी एक भी तो अभिनेत्री नजर नहीं आती

है। इसी प्रकारके नाना कारणोंसे साहित्यकी इस दिशामें पग रखनेकी इच्छा नहीं होती। आशा करता हूँ किसी दिन वर्तमान रंगमंचकी यह कमी दूर होगी, लेकिन शायद हम उसे आँखोंसे नहीं देख सकेंगे। अवश्य ही अगर वास्तविक प्रेरणा आई तो शायद कभी लिख भी सकूँ। लेकिन अधिक आशा नहीं रखना। ('नाच घर,' २५ आश्विन, १३४१)

२०

[जहानआरा चौधुरीको लिखित]

१२ माघ, १३४२

तुमने अपनी वार्षिक पत्रिकामें थोड़ा-सा कुछ लिख देनेके लिए अनुरोध किया है। मेरी वर्तमान अस्वस्थतामें शायद थोड़ा ही लिखा जा सकता है। सोच रहा था, साहित्यके धर्म, रूप, निर्माण, सीमा, इनके तत्त्व आदिपर बीच-बीचमें थोड़ी-बहुत आलोचना हो चुकी है, लेकिन इसके एक और पक्षकी बात खुले आम आजतक किसीने नहीं कही है। वह इसके प्रयोजनका पक्ष है—इसका कल्याण करनेकी शक्तिके सम्बन्धमें। इस बातको शायद कितने ही लोग स्वीकार करेंगे कि साहित्य रसके अन्दरसे पाठकके मनमें जिस प्रकार सुविमल आनन्द उत्पन्न करता है, उसी प्रकार मनुष्यके कितने ही अन्तर्निहित कुसंस्कारोंके मूलपर आघात कर सकता है। इसीके फलस्वरूप मनुष्य महान् होता है, उसकी दृष्टि उदार होती है, उसका सहनशील क्षमाशील मन साहित्य-रसकी नूतन सम्पदासे ऐश्वर्यवान् हो उठता है।

बंगालके एक बड़े सम्प्रदायमें इसका व्यतिक्रम दिखाई पड़ रहा है। साहित्य-सृजनके साथ साथ यहाँ क्षोभ और वेदना उत्तरोत्तर मानो बढ़ती ही जा रही है। मैं तुम्हारे मुसलमान सम्प्रदायकी बात ही कह रहा हूँ। क्रोधमें आकर कोई-कोई भाषाको विकृत करनेसे भी विमुख नहीं है, ऐसा देखनेमें आता है। इसका कारण नहीं, ऐसा नहीं कहता लेकिन गुस्सा उतरनेपर किसी दिन वे खुद ही देखेंगे कि कारणसे अधिक भी वह नहीं है। जिस किसी कारणसे हो

इतने दिनों तक बंगालके केवल हिन्दू ही साहित्य-चर्चा करते आए हैं। मुसलमान-सम्प्रदाय लम्बे समयसे इधर उदासीन था। लेकिन साधनाका फल तो होता ही है, इसीलिए वाग्देवी इन्हें वरदान भी देती आई हैं। मुट्ठीभर साहित्य-रसिक मुसलमान साधकोंकी बात मैं नहीं भूला हूँ, लेकिन वह भी विस्तृत नहीं हुआ। इसीलिए, क्रोधमें आकर तुममेंसे किसी-किसीने इसका नाम रखा है हिन्दू-साहित्य। लेकिन आक्षेप-प्रकाश तो तर्क नहीं है।

यद्यपि, कहा जा सकता है, साहित्यिकोंमें कितने लोगोंने अपनी रचनाओं-में मुसलमान-चरित्र अंकित किया है, कितने स्थलोंमें इतने बड़े सम्प्रदायके सुखदुःखका विवरण दिया है? उनकी सहानुभूति कैसे प्राप्त होगी, उनका हृदय कैसे स्पर्श करेंगे? स्पर्श नहीं किया है, इस बातको जानता हूँ, बल्कि उल्टी बात ही दिखाई पड़ती है। फलस्वरूप जो क्षति हुई है वह थोड़ी नहीं है, और आज इसके प्रतिकारका एक रास्ता भी ढूँढ़ देखना होगा।

कुछ दिन पहले मेरे एक नए मुसलमान मित्रने मुझसे इस बातपर क्षोभ प्रकट किया था। स्वयं भी वह साहित्यसेवी हैं, पंडित अध्यापक हैं, साम्प्र-दायिक मलीनताने अभी उनके हृदयको मलीन, दृष्टिको कलुषित नहीं किया है। कहा, हिन्दू और मुसलमान ये दो सम्प्रदाय एक ही देशमें एक ही आबहवामें आसपास पड़ोसीकी तरह रहते हैं, जन्मसे एक ही भाषा बोलते हैं, फिर भी इतने विच्छिन्न, इतने पराए बने हुए हैं कि सोचकर अचरज होता है। संसार और जीवन-धारणके प्रयोजनसे एक बाहरी लेन-देन है, लेकिन आन्तरिक लेन-देन बिलकुल नहीं है, ऐसा कहना झूठ नहीं होगा। क्यों ऐसा हुआ, इसकी गवेषणाकी आवश्यकता नहीं; लेकिन आज विच्छेदका अंत, इस दुःखमय अन्तरका खात्मा करना ही पड़ेगा। नहीं तो किसीका भी मंगल नहीं होगा।

कहा, इस बातको मानता हूँ। लेकिन इस दुःसाध्यके साधनका कौन-सा उपाय सोचा है?

उन्होंने कहा, एक मात्र है साहित्य। आप लोग हमें खींच लें। स्नेहके साथ सहानुभूतिके साथ हमारी बातें लिखिए। केवल हिन्दुओंके लिए ही हिन्दू-साहित्यका सृजन मत कीजिए। मुसलमान पाठकोंकी बात भी जरा याद

रखिए। देखेंगे, बाहरी अन्तर कितना भी बड़ा क्यों न दिखाई पड़े, फिर भी एक ही आनन्द एक ही वेदना दोनोंकी नसोंमें प्रवाहित होती है।

कहा, इस बातको मैं जानता हूँ। लेकिन अनुरागके साथ विराग, प्रशंसाके साथ तिरस्कार, अच्छी बातोंके साथ बुरी बातें भी गल्प-साहित्यका अपरिहार्य अंग हैं। लेकिन इसपर तो तुम लोग न करोगे विचार, न करोगे क्षमा। शायद ऐसे दंडकी व्यवस्था करोगे, जिसे सोचनेपर भी शरीर थर्रा उठता है। इससे जो है वही निरापद है।

इसके बाद दोनों ही क्षणभर चुप रहे। अंतमें मैं बोला, तुम लोगोंमेंसे कोई कोई शायद कहेंगे कि हम कायर हैं, तुम लोग वीर हो, तुम लोग हिन्दुओंकी कलमसे निन्दा बरदाश्त नहीं करते हो और जो प्रतिशोध लेते हो वह भी चरम है। यह भी मानता हूँ, और तुम लोगोंको वीर कहनेमें व्यक्तिगत रूपसे मुझे आपत्ति नहीं है। लेकिन यह भी कहता हूँ कि तुम्हारी इस वीरताकी धारणा अगर कभी बदलती है तो देखोगे कि तुम्हीं सबसे अधिक क्षतिग्रस्त हुए हो।

तरुण मित्रका चेहरा विषण्ण हो उठा, बोले, क्या तब इसी तरहका असहयोग (Non-co-operation) चिरकाल चलेगा ?

बोला, नहीं, चिरकाल नहीं चलेगा; क्यों कि, जो साहित्यके सेवक हैं उनकी जाति, उनका सम्प्रदाय अलग नहीं, मूलमें हृदयमें वे एक हैं। उसी सत्यकी उपलब्धि करके इस अवांछित सामयिक अन्तरको आज तुम्हीं लोगोंको खत्म करना होगा।

मित्रने कहा, अबसे इसीकी चेष्टा करूँगा। बोला, करना। अपनी चेष्टाके बाद भगवानके आशीर्वादका प्रतिदिन अनुभव करोगे।

['वर्षवाणी', तृतीय वर्ष १३४२]

२१

[काज़ी वदूदको लिखित]

बाजे शिवपुर, हावड़ा
२०-३-१९१८

सविनय निवेदन है कि दो दिन पहिले आपका पत्र और 'मित्र परिवार' मिले। अंतिम कहानी 'हमीद' को छोड़कर बाकी तीनों कहानियाँ पढ़ ली हैं। आज कल कहानी पढ़ कर आनन्द पाना और प्रशंसा कर सकना दोनों ही मानो कठिन हो गया है। पुस्तक उपहार पाकर ग्रंथकारको दो अच्छी बातें कहने और सर्वान्तःकरणसे उत्साह देनेका मौका न पानेके कारण अतिशय कुण्ठित रहता हूँ। आपने मुझे वह सुअवसर दिया है, इसलिये धन्यवाद देता हूँ। सचमुच ही मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। अगर यह आपकी पहली चेष्टा है, तो भविष्यमें आपसे बहुत अधिक आशा की जा सकती है, इसे कहनेकी आवश्यकता नहीं।

अपनी रचनामें आपने उर्दू शब्दोंका व्यवहार करके अच्छा ही किया है। अन्यथा मुसलमान पाठक पाठिका कभी इसे अपनी मातृ-भाषा समझकर निःसंकोच रूपसे स्वीकार नही कर पातीं। उन्हे बारंबार यही लगता कि यह हिन्दुओंकी भाषा है, उनकी नहीं। इन दो अगल बगल बसनेवाली जातियोंमें साहित्यिक मिलन स्थापित करनेका शायद यही सबसे अच्छा तरीका है। हाँ, सब साहित्यिक इस मतके पक्षमें नही हैं, पर मैं इसी तरहकी रचनाका पक्षपाती हूँ।

पर आपको एक बात स्मरण करा देनेकी जरूरत महसूस करता हूँ। मैं बहुत दिनोंसे यह व्यापार कर रहा हूँ। हो सकता है कि थोड़ा बहुत अनुभव भी संचय किया हो। आशा करता हूँ यथोचित उपदेश देनेके कारण क्षुब्ध नहीं होंगे। बात यह है कि सभी जातियोंमें भले बुरे आदमी हैं। हिन्दुओंमें भी हैं, मुसलमानोंमें भी हैं। इस सत्यको कभी न भूलें और एक बात याद रखें कि ग्रंथकार किसी विशेष जाति-सम्प्रदाय या धर्मका नहीं होता। वह हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, यहूदी सब कुछ है। भवदीय—

श्री शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय

२२

[श्री उमाप्रसाद मुखोपाध्यायको लिखित]

सामताबेड़, पो० पाणित्रास
जि० हावड़ा
२५ अषाढ़ १३३३

परम कल्याणीयेषु !......उमाप्रसाद, परसों तुम्हारी चिट्ठी मिली। मेरी सचमुच ही बड़ी इच्छा होती है कि सदाकी तरह इस बार भी और केवल इस बार ही नही, सारे भविष्यमें तुम सबसे आगे आगे चलो। अध्ययन अच्छा नहीं हुआ है, यह मैं जानता हूँ, फिर भी आशा है कि कोई आसानीसे तुमसे आगे नहीं बढ़ सकेगा।

उसके बादसे मैं कलकत्ता नहीं गया। इधर छोटी परिधिमें जैसे तैसे दिन कट जाते हैं। लेकिन एक बार शहरका मुँह देख आने पर सँभलनेमें पाँच सात दिन लग जाते हैं।

इसके अलावा वर्षा, बादल, कीचड़में रास्ता चलना कठिन है। उसकी शक्ति भी नहीं, उद्यम भी नहीं। कुछ दिन पहिले अँधेरी रातमें दो सीढ़ियोंको एक समझ कर उतरनेमें जो होना चाहिये था वही हुआ। हाँ बाहर उसके लक्षण नहीं, पर पीठ ओर कमरका दर्द आज भी पूरी तरह दूर नहीं हुआ है।

परीक्षा मन लगाकर देनी ही होगी। कुमुद बाबूसे मुलाकात होनेपर कहना कि उनकी चिट्ठी मिली है। निबन्ध क्या हुआ, मैं नहीं जानता। शायद खो गया है।

तुम्हारी पुस्तक है। अन्तके कई अध्यायोंको देख रखा है। लेकिन पहिले परीक्षा समाप्त हो जाने दो।

सभी मुझे लिखनेके लिये कहते हैं; लेकिन समझ नहीं पाता कि क्या लिखूँ। सब कुछ अर्थहीन, अनावश्यक लगता है। और ग्रथकारोंकी तरह अपने मनको अगर पुराने जमानेकी 'साहित्य-सेवा' के अंदर एक बार

फिर खींच ले जा सकता तो शायद कितने ही 'बिन्दोका लल्ला,' 'चरित्रहीन' लिखे जा सकते। लेकिन ऐसा नहीं लगता कि इस जीवनमें वह बात फिर आवेगी। निरंतर सोचता हूँ कि लिख कर क्या होगा? लोगोंको आनन्द मिलता है? भले ही आनन्द न मिले पहिले पानेका अधिकार प्राप्त करें, उसके बाद 'बिन्दोंका लल्ला,' 'रामकी सुमति'के ढेर लिखनेवाले बहुतेरे पैदा होंगे।

निर्मल क्या अब भी भवानीपुरमें है? हाथ देखना सीखनेकी बड़ी इच्छा हो रही है। मेरा सस्नेह आशीर्वाद लेना। इति।

— श्रीशरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

---

१२ श्रावण १३३३

परम कल्याणीयेषु। उमाप्रसाद, कल तुम्हारी चिट्ठी मिली। पहले भी एक चिट्ठी मिली थी, पर यथारीति जवाब नहीं दे सका।

अभी अभी एक मल्लाहकी दवा दारू कर आया। सारे शरीरपर टिंचर आयोडिन लगा कर आर्निका खानेकी व्यवस्था और सेकनेका इन्तजाम करके लौटा हूँ। कल रात उसकी नाव डूबी और उसके ऊपरसे बह गई।

बहर हाल एक बातसे निश्चिन्त हो गया हूँ। इस मकानको रूपनारायण (नद) को उत्सर्ग करके चैनकी साँस ली है। ज्वार और वन्यामें यह नद कितना भीषण हो सकता है, इस बार अच्छी तरह देख लिया है। जिस बाँधपरसे तुम लोग आते थे, वह अब नहीं रहा। आजके ज्वारमें शायद निश्चिह्न हो जायेगा। इसके बाद जल ही जल रहेगा। बंगालमें षड्-ऋतुओंका अर्थ वास्तवमें क्या है, यहाँ साल भर रहे बिना जाना ही नहीं जा सकता। यह भी एक बहुत बड़ा फायदा है।

उसके संबंधमें कुतूहल अवश्य है, पर जानता हूँ कि सही हाथोंमें है। उपाय अगर है तो होगा ही, उसके लिये मुझे माथापच्ची नहीं करनी होगी। लेकिन अन्तमें क्या होगा, सो तो जाना हुआ ही है। १०, १५ दिन वन्या और ज्वार, यहाँ मिट्टी डालना, वहाँ गढ़ा पाटना, इसीको लेकर बीत जायँगे। शीघ्र जा सकूँगा इसकी आशा नहीं।

फाउनटनपेन पड़ी हुई है। वह टार्च भी टूट गया है।

तुम्हारी वकालत-परीक्षाका नतीजा क्या निकला ?

मेरा आशीर्वाद लेना। शरीरकी हालत बहुत बुरी नहीं है।

—श्रीशरत्‌चंद्र चट्टोपाध्याय

---

१८ कुआँर १३१३

परमकल्याणवरेषु। बिजू, बहुत, दिनोंसे तुम्हारी चिट्ठी नहीं मिली, कहाँ हो, यह भी ठीक ठीक नहीं जानता। मेरी तबियत पहिलेसे बहुत अच्छी है। दो इमेटीन इंजेक्शनोंसे शायद फायदा हुआ है। बराबर खूनका जाना बिलकुल बंद है। सैनोटेजेन, अंडा और चकोतरा इन सब चीजोंको नियमित रूपसे खानेसे दिमागकी शून्यता कम हुई है। लेकिन बाहरसे चेहरा निरंतर दुर्बल होता जा रहा है। होता जाए। 'भारत-लक्ष्मी' नामक एक नये मासिक पत्रका संपादक बननेके लिये राजी हो गया हूँ। कमसे कम अंत तक राजी होना होगा। आज एक चिट्ठी लिख दी है। अगर उन शर्तोंपर तैयार हुए तो संपादनका भार ले सकता हूँ। संसारमें बहुतेरे लोगोंके बारेमें जो होता है, मेरे बारेमें भी वही हुआ। अर्थात् संसारमें बुद्धिमान् और बेवकूफ दोनों हैं, और एक पक्षकी जीत होती है। अधिक न होने पर भी ५,६ हजार रुपयेका जमानतदार हूँ। सोचा है कि भारत-लक्ष्मीमें शामिल होकर इसे चुका दूँगा। वे मुझे चौथाई हिस्सा देंगे। अब सांसारिक बुद्धिवाले जैसा आचरण करते हैं, मैं भी वैसा ही करूँगा। अर्थात् ठगा नहीं जाऊँगा। दशहरेके बाद ही सारी बातें तफसीलके साथ तय करूँगा। लेकिन इसी बीच साहित्यिक परिचित अपरिचित बहुतेरे लोग लिख रहे हैं कि उनकी रचना लेकर पेशगी रुपये भेजूँ। हाय, इसकी शक्ति अगर होती! किन्तु इसी शक्तिकी मुझे परम आवश्यकता है।...

बहुत दिनोंसे तुम्हें नहीं देखा है। तुम लोगोंकी बीमारी अगर अच्छी हो गई हो तो एक बार चले क्यों नहीं आते ? मेरा स्नेहाशीर्वाद लेना।

—दादा।

---

२४ अश्विनीदत्त रोड, काली घाट,
कलकत्ता
१२ कार्तिक १३४२

कल्याणीयेषु। बिजू, कल गाँवसे यहाँ आनेपर तुम्हारी चिट्ठी मिली। जल्दीमें लौट आना पड़ा क्यों कि वहाँ खबर पहुँची कि बड़ी बहू न्यूमोनियासे खाट पकड़े हुए है। लेकिन मामला बहुत आगे नहीं बढ़ा है। आशा है जल्द ही अच्छी हो जायगी। नहीं तो गरीब आदमी हूँ, कलकत्तेके इलाजका भारी खर्च बरदाश्त नहीं कर सकूँगा।

मेरे ६१ वें वर्षके प्रारम्भपर कविने आशीर्वाद दिया है—अकृपण भाषामें, दिल खोलकर मंगल कामना की है। आनन्दबाजार पत्रिकामें जितना प्रकाशित हुआ था वह तुम्हें भेज दिया है, अपने हाथसे लिखा (आशीर्वाद) मुझे दिया है। तुम्हारे आनेपर उनके दूसरे पत्रोंकी तरह इसे भी रखनेके लिए तुम्हें दूँगा। तब इस पत्रांशको मुझे लौटा देना। मैं चंगा नहीं हूँ सही, पर पहलेसे बहुत अच्छा हो गया हूँ। बुखार नहीं है। तुम मेरा आशीर्वाद लेना और तुम्हारे बड़े भाइयोंमें कोई हों तो उन्हें मेरी शुभेच्छा कहना।

—शुभार्थी, श्री शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय

२३

[रवीन्द्रनाथ ठाकुरको लिखित]

बाजे-शिवपुर, शिवपुर,
२९ पौष १३२४

श्रीचरणेषु। आज हम आपके पास जा रहे थे। लेकिन रास्तेमें श्रीयुक्त प्रमथ बाबूके यहाँ टेलीफोन करने पर पता चला कि आप बोलपुरमें हैं। माघोत्सवमें शायद आयँगे। लेकिन उस वक्त मुलाकात करना कठिन है।

मेरे मुहल्लेमें एक छोटी-सी साहित्य-सभा है। एक-दो महीनेमें किसीके घर-

पर उसका अधिवेशन होता है। बहुत ही नगण्य तुच्छ मामला है। फिर भी पिछली बार हमने प्रमथ बाबूको पकड़ा था और वह कृपा कर सभापति बने थे।

कई दिनोंसे हम लगातार बहस करके तय नहीं कर पा रहे हैं कि इस सभामें आपकी पदधूलि पड़नेकी कोई संभावना है या नहीं।

इस बार जब घर लौटें तो अगर अनुमति दें तो हम जाकर आपसे निवेदन करें। —सेवक श्री शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय

बाजे-शिवपुर, हावड़ा
२६ वैशाख १३२९

श्रीचरणेषु। लड़कोंसे सुना था कि आप मुझसे अतिशय असंतुष्ट हुए हैं। उत्तेजनामें आकर गुस्सेमें हो सकता है कि आपके बारेमें कोई मिथ्या बात कही हो। लेकिन जो व्यक्ति इसकी सचाई-झुठाईकी जाँच करने आपके पास गए थे उन्होंने भी कुछ कम अपराध नहीं किया है। इंग्लैंडके बर्त्तावसे आप क्षुब्ध हुए हैं और सब कुछ वही पंजाबवाली चिट्ठीके लिए। उसके न लिखनेसे यह सब नहीं होता—इन बातोंको मैंने उस समय ठीक ठीक कैसे कहा था मुझे याद नहीं। आम तौरसे मैं बनाकर झूठ नहीं बोलता, पर बोलना एकदम असंभव है ऐसा भी नहीं। कमसे कम इन बातोंको तो अवश्य ही कहा है कि इस बार विलायतसे लौटकर आप बहुत बदल गये हैं और बंगालके लोगोंके प्रति आपका पहिला स्नेह और ममत्व अब नहीं है। चरखा, असहयोग आदि पर आपकी तनिक भी आस्था या विश्वास नहीं है, इत्यादि।

आपके पाससे एक दिन गुस्सेमें ही मैं चला आया था। उसके बाद ही शायद कुछ झूठी बातोंका प्रचार किया होगा। शायद मेरे मनमें यह भाव था कि लोग गलत समझते हैं तो समझें।

आपके प्रति मैंने बहुत बड़ा अपराध किया है पर प्रथम अपराध होनेके कारण मुझे क्षमा करेंगे। आपके सिवा और किसी बड़े आदमीके यहाँ मैं जानबूझकर कभी नहीं जाता। पर मेरे लिए उसका रास्ता भी मेरे अपने ही दोषसे बन्द हो गया है। सोचने पर दुःख होता है।

आपके अनेकों शिष्योंमें एक मैं भी हूँ; उनकी तरह इतने दिनों तक मैंने भी कभी आपकी निन्दा नहीं की। लेकिन इस बार क्यों शामत आई, नहीं जानता।

मेरी प्रणाम स्वीकार करें। इति। —सेवक श्री शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय

बाजे—शिवपुर, हावड़ा
२६ बैशाख १३३६

श्रीचरणेषु। क्षुद्र स्वार्थके लिए आप देशका अमंगल करेंगे, इतनी बड़ी निन्दा, अगर की ही हो, तो उसके बाद चिट्ठी लिखकर आपसे क्षमा माँगने जाना केवल विडम्बना ही नहीं है, आपका विद्रूप करना भी है। अतएव आपके पत्रका स्वर इतना कठिन होगा इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं।

भारी अपराधकी बात जिन लोगोंने आप तक पहुँचाई है, उन्होंने कहीं इसकी सीमा नही रखी।

इसके बाद मैं क्या कहूँ। मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

सेवक,
श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

बाजे शिवपुर, हावड़ा
२ माघ १३३०

श्रीचरणेषु। हजारों प्रकारके कामोंमें फिलहाल आपको तनिक भी फ़ुरसत नहीं है, इस बातको हम सभी जानते हैं। फिर भी मैंने यह सोचकर लिखा था कि जो गीत आपके लिये बात करने जैसा ही सहज है एक मात्र उसीके जोरसे मेरे नाटककी सारी त्रुटियाँ ढक जातीं।

सत्येन्द्र जीवत होता तो आपकी इस चिट्ठीको दिखाकर आज आसानीसे उससे गीत लिखा ला सकता था। उसके लिये यह चिट्ठी आदेश जैसी होती। लेकिन वह परलोकमें है और दूसरा कोई नहीं, जिससे जा कर कहूँ।

कलकत्ता आनेपर तो आपको दम मारनेकी भी फुरसत नहीं मिलती। उस समय इस बातको लेकर मैं उत्पात नही करूँगा। मेरा अशेष प्रणाम स्वीकार करें।

— सेवक

श्री शरत्चंद्र चट्टोपाध्याय

सामताबेड़, पाणित्रास, हावड़ा
२६ आश्विन १३३६

श्रीचरणेषु। मेरा दशहरेका अशेष प्रणाम स्वीकार करें। इस बीच आप नाना गुरूतर कामोंमें फँसे हुए थे और शान्तिनिकेतन भी नहीं ठहर सके। इसीलिये प्रणाम निवेदन करनेमें विलंब किया।

समयकी गतिके साथ साथ आपका जो आशीर्वाद मिला, मेरे लिए वह श्रेष्ठ पुरस्कार है। आपका तुच्छतम दान भी संसारमें किसी भी साहित्यिकके लिये संपदा है। इस दानको सिर माथे लेता हूँ।

मेरी तकदीर अच्छी है। ३१ भाद्रपदको आपका कलकत्ता आना संभव नहीं हुआ। आते तो उस दिनका अनाचार देखकर अत्यन्त व्यथित होते और सबसे बढ़कर दुःखकी बात है कि मेरे प्रायः समवयस्क साहित्यकोंने ही इस उपद्रवका सूत्रपात किया था। सान्त्वनाकी बात केवल यही है कि इसीको यह लोग पसंद करते हैं, मैं उपलक्ष मात्र हूँ। क्योंकि पिछले साल जयन्ती उत्सवमें इन्होंने कुछ कम दुःख देनेकी चेष्टा नहीं की थी। मैं एक दिन स्वयं आपको प्रणाम कर आना चाहता हूँ। केवल संकोचके कारण नहीं आ पाता हूँ, कहीं कोई कुछ समझ न बैठे।

आपकी तबीयत अब कैसी है? इस गिरे स्वास्थ्यको लेकर आप कैसे इतना अधिक शारीरिक परिश्रम कर पाते हैं, यही अचरजकी बात है। इति।

सेवक —

श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

२४

[केदारनाथ बंद्योपाध्यायको लिखित]

बाजे शिवपुर, हावड़ा
१२-१०-१९२०

श्रद्धास्पदेषु। केदार बाबू, आपका हाल सुन लिया, अब इस गरीबका हाल सुनिये।

कुछ दिनसे रीढ़में थोड़े बहुत दर्दका मजा ले रहा था, इससे किसीको कोई खास लाभ नुकसान नहीं था। न मुझे और न गृहिणीको। अकस्मात् एक दिन रातमें दर्दसे नींद टूट जानेपर देखा कि साँस लेना असंभव है। *बहुत सेंक-साँक मालिश वगैरह करनेपर सबेरे कुछ अच्छे लक्षण दिखाई भी* पड़े, तो शाम होते ही ऐसा हुआ कि डाक्टरका बुलाना अनिवार्य हो गया। तबसे भुगत रहा हूँ। इसके ऊपर एक दिन मोटरके स्लीप हो जानेके कारण कमरमें जोरोंका धक्का लगा, पर अफीमका भरोसा है। अगर इसमें अडिग भक्ति रख सका तो बुरे दिन दूर होंगे ही। भगवान श्री देवादिदेवने हमारे लिये वर दिया है कि अर्शका खून बहाये वगैर हम कभी कैलास नहीं जा सकेंगे। उसका प्रारम्भ जबतक नहीं होता तब तक क्या मैं और क्या आप निश्चिन्त रह सकते हैं, किसी प्रकारकी दुश्चिन्ताकी जरूरत नहीं।

इसी लिये सुरेशको भी जवाब नहीं दे सका। पिछली बारसे आपका—खुद भी दो फूँक पीता हूँ। बड़ा ही सुन्दर और उपभोग्य बन पड़ा है। काली धरामी भी अनिन्दनीय है। प्रायः सभी अच्छे बन पड़े हैं। सुरेशकी असमाप्त कहानीके संबंधमें अब भी कहनेका अवसर नहीं आया है। दो चार रचनाएँ और देखूँ। इस बातको सुनकर वह जितना कहा है उससे कहीं अधिक न समझ बैठे। पत्र चित्र इत्यादिको किसी भी तरह अच्छा नहीं कहा जा सकता है, पर भविष्यमें अच्छा होगा इसकी आशा करना सोहता है।

मैं हूँ तो। लिखने बैठ रहा हूँ। जल्द ही भेज कर निकल पड़ूँगा जिधर भी दोनों आँखें ले जायँ। बीमारीके कारण इस बार 'भारतवर्ष'के लिए "लेन देन" नहीं लिख सका। आपका—श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

आपके सँभले हुए हाथोंमें पतवार रहा तो, और कुछ भी क्यों न हो 'प्रवास-ज्योति' के डूबनेकी संभावना नहीं। मुझे लगता है कि इस दुस्समयमें आपको अफीम भी कुछ बढ़ा देनी चाहिये। और कर्तव्यपालन जैसी बड़ी वस्तु संसारमें दूसरी नहीं।

बाजे शिवपुर, हावड़ा
१८-११-१९२०

श्रद्धांस्पदेषु। केदारबाबू, आपकी चिट्ठी लौटकर भागलपुरमें मिली। आपके साथ मेरा व्यवहार काफी निन्दनीय हो गया। लेकिन मजबूर होकर ही ऐसा हुआ। आशा है भविष्यमें फिर कभी ऐसा नहीं होगा। पहिली बात है बीमारीमें बिस्तरपर पड़ा था। कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था। इसके बाद जब शरीर स्वस्थ हुआ तो दूसरे उपसर्ग दिखाई पड़े। आपके लिये रचना इस महीने भेज सकता था, पर 'भारतवर्ष'में न भेजनेके कारण आप लोगोंको भी न भेज सका। उनको न देकर आप लोगोंको देनेसे उनको असीम व्यथा ही नहीं पहुँचती, अपमान भी होता।

इस महीनेसे फिर सब कुछ नियमित होगा। मुझे लेकर जो भी कोई कारबार करते हैं उन्हें इसी तरह भुगतना पड़ता है। मैं केवल खुद ही अन्याय नहीं करता, और पाँच आदमियोंको भी विडंबित करता हूँ। इसे आप लोग निज गुणसे क्षमा करें। स्वभावं।

अब कैसे हैं? कभी कभी खबर दिया करें। मैं जितनी जल्दी हो सकेगा भेज रहा हूँ। इस विषयमें इस बार निश्चिन्त रह सकते हैं।

दूसरे मित्रोंको मेरा नमस्कार कहें और खुद भी लें। आप लोगोंका—
शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

बाजे शिवपुर, हावड़ा
६ अप्रैल १९२४

प्रियवरेषु। केदार बाबू, मेरे आचरणसे, मेरी बातोंका मेल नहीं बैठेगा।

इसलिये अगर कहूँ कि कितनी ही बार मन ही मन सोचा है कि कहीं अचानक मुलाकात हो जाए तो दोनोंको ही न जाने कितनी प्रसन्नता होगी। इस बात-पर शायद आपको विश्वास न हो। आपको कभी चिट्ठी नहीं लिखता, एक प्रकारसे किसीको नहीं लिखता। लेकिन आप मुझसे कितना स्नेह करते हैं इस बातको एक दिनके लिये भी नहीं भूला।

अखबारोंसे खबर पाकर मेरे लिये दीर्घजीवनकी कामना की है, इसके अंदरकी वस्तु भूलनेकी नहीं।

लेकिन दीर्घजीवनकी प्रार्थना क्यों? आपसे सच कह रहा हूँ कि अगर कल लौट आनेके लिये बुलावा आजाए, तो 'भैया, कल आना—एक दिन बाद जाऊँगा,' यह नहीं कहूँगा।

बहुत दिनों तक जिया। अब धीरे धीरे चल देना ही देखने सुननेमें शोभन होगा। क्या शोभन नहीं होगा? मेरी कुण्डलीमें लिखा है कि ४९ पूरा होनेके पहिले जाना किसी भी दशामें नहीं होगा। मैं कहता हूँ कि बाबा, खुश दिल होकर माफी दे दो! माफी पानेकी विधि तो अँग्रेजोंकी जेलोंमें भी है। कुछ छूट दे दो।

केदार बाबू, मैं श्रान्त हो गया हूँ, इसके अलावा कोई खास रोग-व्याधिकी बला नहीं है! लोग मुझे निरंतर जोतना ही चाहते हैं!

आप कैसे हैं? काशीमें आप क्यों नहीं रहते? इस शहरमें एक सुन्दरता यह है कि परिचितोंका मुँह बीच बीचमें देखनेको मिल जाता है।

कभी कभी यों ही अपना समाचार दें। मेरी श्रद्धा और नमस्कार लें।

आपका सेवक—श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

बाजे शिवपुर, हावड़ा
१४-१०-१९२४

प्रियवरेषु। आज सबेरे आपकी चिट्ठी मिली। नाना कामोंमें भूला रहता हूँ। प्रति दिन बहुतेरी चिट्ठियाँ मिलती हैं। पर कभी कभी आपकी लिखी कुछ पंक्तियाँ मुझे जो आनन्द देती हैं वह सचमुच ही दुर्लभ है। प्रीतिके अंदरसे

आते हुए वह मानो बहुत कुछ साथ लाती हैं। केदार बाबू, आदमीके सच्चे प्यारको मैं समझता हूँ। इसमें मैं अधिक भूल चूक नहीं करता हूँ। आपका शरीर ठीक नहीं है। मानो जरा जल्द ही वह जीर्ण हो गया। किसी दिन अगर वह बोझ ढोनेके इन्कार कर दे, तो मैं हाय हाय नहीं करूँगा। पर व्यथा पहुँचेगी। तब नई रचनाओंके साथ साथ निरन्तर यही लगेगा कि एक ऐसा आदमी नहीं रहा जिसमें इस रचनाको ग्रहण करनेका हृदय या शक्ति थी। अपनी निजी रचनाओंके संबंधमें आपने कभी कुछ भी नहीं कहा। लेकिन आपका जहाँ जो कुछ प्रकाशित हुआ है, सब कुछ पढ़ा है। प्रशंसाके बदले प्रशंसा करनेमें मुझे बड़ा संकोच होता था। निरन्तर यही लगता था कि कहीं आप विश्वास न करें, कहीं आपके आत्मसम्मानमें ठेस न लगे।

वर्ष भी आवेगा, दशहरा भी आवेगा—एक दिन, पर आप भी नहीं आयेंगे और मैं भी नहीं। आप उम्रमें मुझसे बड़े हैं। आप मुझे आशीर्वाद देंगे। मेरे लिये वह दिन दूर न हो। मैं बहुत श्रान्त हूँ। तुच्छ सुख तुच्छ दुःख, कभी हँसना कभी रोना—मेरे लिए बिलकुल पुराना हो गया है। ४८ सालकी उम्र हुई—बहुत हुई। मेरी बड़ी इच्छा है कि इसके बाद अब क्या पाना बाकी रह गया है, व्यर्थ ही अधिक विलंबकी आवश्यकता नहीं समझता हूँ। आप मुझे आशीर्वाद दें। सत्यके सम्मुख ही अगर आ गये हों तो आपका सच्चा आशीर्वाद मेरे लिये फलित होगा। —आपका श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

सामताबेड़,
पानित्रास पोस्ट, जिला हावड़ा
८ वैशाख १३३३

प्रियवरेषु। केदार बाबू, कई दिन हुए आपका एक पोस्टकार्ड मिला। पत्र छोटा होने पर भी स्नेहसे भरा हुआ है। नहीं जानता हूँ कि आपने मुझसे प्यार क्यों किया। जिन गुणोंके कारण मनुष्य मनुष्यको प्यार करता है उनमेंसे मेरे पास कोई भी नहीं है। कमसे कम त्रुटियाँ इतनी अधिक हैं कि उनकी गिनती नहीं।

उस दिन दिलीपकुमार रायको रविबाबूने लिखा था "सुना है कि शरत् अपने कानूनके अनुसार अपनेको किसी द्वीपान्तरमें चालान करके निस्संग बन्दी व्रत ग्रहण करके बैठे हुए हैं—उनका पता नहीं जानता, तुम अवश्य ही जानते होंगे। अतएव मुलाकात करके या पत्रद्वारा लिखना कि वह कहीं भी क्यों न रहें सर्वान्तःकरणसे उनके कल्याणकी कामना करता हूँ।"

केदारबाबू, बन्दी व्रत ही लिया है। शहरमें रहूँ या गाँवमें रहूँ, मैं संसारके ज्वार-भाटोंसे दूर हो गया हूँ।

स्वास्थ्य दिन प्रति दिन गिरता जा रहा है। आपको शायद याद होगा कि मेरी कुंडलीमें ५१ वें वर्षमें जानेकी बात लिखी है। अब उसमें अधिक देर नहीं है, डेढ़ वर्षकी देर है। ईश्वर वैसा ही करें। अब वह मेरी क्लान्तिको आगे न बढ़ायें।

कानपुर जानेके एक दिन पहिले अचानक कई बार कै हो जानेसे पेटमें इतना दर्द होने लगा कि डाक्टरके कहनेपर ५, ६ दिन बिस्तरपर पड़ा रहा। अब वैसी हालत नहीं है। अब यथार्थ ही आपसे एक बार मुलाकात करनेकी बहुत ही इच्छा होती है। गर्मी यदि इतनी अधिक न पड़ती तो मैं काशी जानेके लिये आपको किरायेपर मकान लेनेके लिये अनुरोध करता।

अब कुछ नहीं करता हूँ। रूपनारायणके तीरपर घर बनाया है। इजी चेयरपर दिन रात पड़ा रहता हूँ।

हरिदास भाईसे मुलाकात हो, तो मेरा आन्तरिक स्नेह आशीर्वाद दें। फिलहाल अच्छा हूँ। सामान्य शिकायतके अलावा विशेष अभियोग नहीं है। मेरा श्रद्धापूर्ण नमस्कार लें। इति।—श्रीशरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

सामताबेड़, पानित्रास
२२ कार्तिक १३३३

प्रियवरेषु। आपकी चिट्ठी मिली। केदार बाबू, कहनेके लिये अब कुछ नहीं है। घरके एक पशु पक्षीकी मृत्यु भी जिससे सही नहीं जाती, उसके पास कहनेके लिये है ही क्या? आप लोगोंके पास जाकर बैठनेकी बड़ी इच्छा होती है।

और सोचता हूँ कि अन्दर ही अन्दर मैं इतना दुर्बल था, यह तो, नहीं जानता था। इस व्यथा (भ्रातृवियोग) को कैसे सहूँगा ?—आपका शरद्

सामताबेड़, पानित्रास
२३-२-१९२७

परमश्रद्धास्पदेषु। केदार बाबू, मैं तो अब भी जिन्दा हूँ। मेरा नमस्कार लें। और आप ? हैं न ? जिन्दा रहें तो समाचार दें। नहीं हैं तो क्या करेंगे ? उस हालतमें जवाब न मिलनेपर मुझे क्रोध नहीं आयेगा। यथार्थ ही मेरा मन इतना उदार और क्षमाशील हो गया है। गृहिणी हैं या पहले ही चली गई हैं ?
—आपका शरद्

सामताबेड़, पानित्रास
२६ कुआँर १३३४

प्रियवरेषु। नमस्कार करनेका समय हो गया। इसी लिये काशी-जाना एक प्रकारसे तय है। घरके लिये चिट्ठी लिख देता हूँ। बस, खबर मिलनेकी देर है।

लेकिन आप न रहे तो ? बाबा विश्वनाथके कुछ दिन अनुपस्थित रहनेसे भी मैं आपत्ति नहीं करूँगा। लेकिन आपकी अनुपस्थितिमें काशीमें एक दिन भी मेरे लिये बोझ हो जायगा। कृपा करके मेरे निवेदनको अतिशयोक्तिकी कोटिमें डालकर निश्चिन्त न रहें। मैं जानता हूँ कि मुझे आप समझते हैं। इति।
—आपका शरद्

सामताबेड़, पानियास पोस्ट
१० जून १९२८

प्रियवरेषु। न जाने कितने दिनोंके बाद आपकी लिखावट देखनेको मिली। सबसे पहले यह बात मनमें आई कि प्यार जहाँ सच्चा है, जहाँ आन्तरिक वस्तु है वहाँ कोई भ्रम नहीं है। मन स्वयंसिद्धकी तरह मान लेता है। हमारे बाहरके आचरणको देखकर कोई नहीं सोच सकता कि

हममेंसे कोई एक दूसरेको याद करता है। पर अपनी ओरसे जानता हूँ कि जब कभी आपकी रचना पढ़ी है तभी काशीकी बात याद आ गई है। अन्तिम जीवनमें इतना ही पाथेय रह गया। पहले अकसर इच्छा होती थी कि काशी जाऊँ—अब वह इच्छा नहीं होती। क्यों कि आप काशीमें नहीं हैं। अच्छा केदार बाबू, काशीवास क्या आपने छोड़ दिया? अन्तमें क्या पूर्णियाके जहन्नुममें ही रहेंगे? जानता हूँ कि आपको पुर्णिया छोड़नेमें बहुतेरी बाधायें हैं। फिर भी आप उसी जगह हैं, खयाल आने पर बुरा लगता है। सोच भी नहीं सकता कि यही तो काशी है। इच्छा होते ही जाकर केदार बाबूसे मुलाकात की जा सकती है।

अब लगता है कि सामताबेड़का मेरा आसन डिगा। अब अच्छा नहीं लगता। अथ च, कहाँ जाने पर ठीक अच्छा लगेगा, यह भी निर्णय नहीं कर सकता। दशहरेके बाद कोई फैसला करूँगा।

आपने 'षोड़शी' की बात किससे सुनी? शिशिरका अभिनय देखा है? कैसा सुन्दर अभिनय करता है! नाटक मेरे उपन्यास 'लेन-देन'से लिया गया है। मंचके लायक एक पुस्तक (नाटक) भी छपी है। पढ़ा है? नाटक कैसा भी क्यों न हो अभिनय बहुत अच्छा होता है।

आपकी तबीयत अब कैसी है केदारबाबू? आप अच्छे तो हैं? प्रार्थना करता हूँ कि आप कुछ दिन और जिन्दा रहकर कहानियाँ लिखें। मैं आपकी हरएक पंक्ति पढ़ता हूँ। मधुर रचना होनेके कारण नहीं, यथार्थमें साहित्यिक आदमीकी रचना होनेके कारण पढ़ता हूँ।

मैं भला बुरा जिन्दा हूँ। परन्तु जिन्दा रहना पुराना हो गया है, प्रति दिन इस बातका अनुभव कर रहा हूँ। —आपका शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

चिट्ठीका जवाब देना न भूलें।

सामताबेड़, पानित्रास पोस्ट
२७—कुआँ १३३६

प्रियवरेषु। आज विजया दशमीकी सन्ध्या है। मेरा श्रद्धापूर्ण नमस्कार लें।

इस जीवनमें जिन इने गिने लोगोंका यथार्थ स्नेह पाकर धन्य हुआ हूँ आप उन्हींमेंसे एक हैं। लेकिन स्नेहकी मर्यादा केवल जड़ता और आलसके कारण हीं नहीं रख सका। शायद ऐसा एक भी महीना नहीं बीतता जब आपको याद नहीं करता और बाहरका अपराध जितना बढ़ता जाता है उतना ही सोचता हूँ कि आप मुझे कभी गलत न समझेंगे।

१ कार्तिक

'कुंडलीका फलाफल' आज सवेरे समाप्त हुआ। अच्छा, मेरे जैसे मामूली आदमीको क्या समझकर इतना गौरव प्रदान कर बैठे ? बतलायें तो, साहित्यिकोंका दल क्या सोचेगा ?

बहुत अच्छी लगी। दीन दुःखी किरानियोंको कोई आज भी इस तरह अन्तरसे अपनाकर मधु लेखनीसे संसारमें प्रकट नहीं करता। वेदनासे कलेजेमें एक टीस-सी लगी है। भाषा और शैली मानों भगवानने आपपर निछावर कर दी है। इस पुस्तकसे एक हितोपदेश भी संग्रह किया है। रेलका तरुण-कवि कर्मचारी जब कहता है कि दिनमें एक बार कापी हाथमें लेकर नहीं बैठनेसे लगता है कि सारा दिन बेकार गया। लिख सकूँ या न लिख सकूँ सोच लेता हूँ कि अपने जीवनमें इस परम सत्य वाक्यको आजसे प्रतिदिन पालन करूँगा। महीने पर महीने बीत जाते हैं कापी दावात कलमको हाथसे छूनेको भी जी नहीं चाहता है। आपके आशीर्वादसे जितने दिन तक जिन्दा हूँ उतने दिन तक प्रति दिन इस बातको याद रख सकूँ।

पुस्तककी एक मात्र त्रुटिका उल्लेख करूँगा। लेकिन आप नाराज न हों, यही अनुरोध है। भगवानने आपको लिखनेकी शक्ति यथेष्ट दी है पर इस बातको भूलनेसे काम नहीं चलेगा कि ऐश्वर्यवानको मितव्ययी होना चाहिये। कंगालको इसकी जरूरत नहीं पड़ती। केवल लिखते जाना ही नहीं है, रुकनेकी बातको भी भूलना नहीं चाहिये।

इस बार काशी कब जा रहे हैं ? जल्दी जायँ तो मुझे दो अक्षर लिख दें। अबसे चिट्ठीका जवाब अगले दिन ही दूँगा। अन्यथा नहीं होगा। नमस्कार।

— आपका शरद्।

पुनश्च। अभी अभी विजयाकी कल्याण-कामनाके साथ साथ जो चिट्ठी आपने लिखी है वह मिली। मेरा श्रद्धायुक्त नमस्कार और धन्यवाद लें।

सामताबेड़, पानित्रास

२५ कार्तिक १३३६

प्रियवरेषु। कई दिन हुए आपका असीम स्नेह लेकर चिट्ठी आई। सोचा था जरा शान्त होकर जवाब दूँगा। उसके लिये मौका नहीं मिल रहा है। लेकिन दो अक्षर ही क्यों न हों, फिर भी आपकी चिट्ठीका जवाब दूँगा। बहुतेरी त्रुटियाँ हो गई हैं, अपराधोंको अब आगे नहीं बढ़ाऊँगा। अतएव लिख रहा हूँ।

गाँवमें रहने आनेका यथायोग्य फलभोग आरम्भ हुआ हो गया है। दीवानी और फौजदारी मुकदमोंमें फँस कर सरगर्मीसे दौड़-धूपकर रहा हूँ।

इन तीन वर्षों तक निर्लिप्त और निर्विकार भावसे बहुत आरामसे रहा, पर गाँवके देवतासे सहा नहीं गया, सिरपर सवार हो गया। बड़े जमींदारोंसे पार पाया जा सकता है पर स्थानीय बहुत छोटे पत्तीदारका दबाव असह्य है। बहुत दिनोंकी शिवकी धर्मादा दो चार बीघा जमीन थी जमीनदारकी दान की हुई, किन्तु दो चार सालके नये पत्तीदारसे नहीं सहा गया। गरीब प्रजा रोने धोने लगी, मैं भी लग पड़ा। खबर भेज दी कि मैं जिस कामको हाथमें लेता हूँ उसे छोड़ता नहीं। इसके बाद फौजदारी शुरू हुई। जाने दीजिए, इस बातको। झंझट बढ़ गया है। सोच रहा हूँ कि इसके किसी तरह समाप्त हो जानेपर भागूँगा। एक प्रकारसे शहर ही सुसह हैं।

कुंडलीका जो विवरण दिया है वह किसी भी दशामें अविश्वसनीय नहीं है। बुखारका एक नशा-सा होता है। फौजदारी मामलेकी तरह उतना अधिक नहीं होने पर भी उसकी उत्तेजना तुच्छ वस्तु नहीं है। बुखारमें लिखनेसे ऐसा ही होगा। होने दीजिये। इसके बाद शान्त और स्वस्थ होकर उसके बढ़े चढ़े हुए हिस्सेको काट कर निकाल देना होगा। यह काम अपना है। मेरा विश्वास है कि इसे दूसरा नहीं कर सकेगा।

उस पुस्तकमें मजाकके बहाने न जाने कितनी गहरी और कितनी मधुर बातें हैं। पुस्तक मेरे पढ़नेके कमरेमें बिस्तरपर रहती है। बीच बीचमें जहाँ पन्ने उलट जाते हैं, वहाँ १०-१५ मिनट पढ़ लेता हूँ।

भादुड़ी महाशयकी कहानी मैंने नहीं पढ़ी है। 'वसुमती' आते ही ऊपर चली जाती है, अकसर वापस नहीं आती। लेकिन घरमें रहती है। पानेमें कठिनाई नहीं होगी।

पढ़नेकी खबर और किसी दिन दूँगा। लेकिन कहानी आपकी है, आप ही-ने लिखी है। उसकी गुत्थियोंको मैं कैसे सुलझाऊँ ? क्या इतनी विद्या है कि आपके ऊपर पंडिताई करनेसे लोग बरदाश्त करेंगे ? लेकिन अगर आदेश करते ही हों तो यथासाध्य कहानीका सर्वनाश करना ही होगा। जनवरी महीनेमें काशी जायँ तो लाहौरसे वापसीमें उतर पड़ूँगा। नमस्कार। आपका—

शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय

सामतावेड़, पानित्रास, ७ पौष १३३७

प्रियवरेषु। सदासे समयके बीत जानेपर ही होश आया। इसीलिये इस जीवनकी सारी काम्य वस्तुएँ हाथके निकट आईं, लेकिन मुट्ठीमें नहीं आ सकीं। बारम्बार चिट्ठी लिखनी चाही बार बार दिन क्षण बीत गये। वह चिट्ठी आज लिखी गई, पर उसका फल नहीं मिला। मुट्ठीके बाहर ही रह गया। मुझे सान्त्वना है कि यह मेरी तकदीरमें लिखा है, इससे बचूँगा कैसे ? प्यार करके खोज खबर लेनेके मामलेमें जीत इस जन्ममें आपहीकी रही। जन्मान्तर यदि है, तो अपील करूँगा।

कैसा हूँ, जानना चाहते हैं ? अच्छा हूँ। रात दिन इसी चेयरपर घिरे बरामदेमें लेटा रहता हूँ। दायाँ पैर लंगड़ा है, दाहिना कान बहरा, बवासीरके बहाने बेकार खून नियमित रूपसे निकला जा रहा है।—तंद्रामें आरामसे क्षण क्षणपर सो जाता हूँ। स्वप्न देखता हूँ, जाग पड़ता हूँ,—सामने बड़ी नदी दिखाई पड़ती है, पालवाली नावोंको गिनता हूँ, न जाने कब अचानक आँख बन्द हो जाती है, सारी बातें भूल जाता हूँ,—दक्षिणसे सूर्यदेव आकर कड़ी धूपसे बदन गरम कर देते हैं। आँख खोलनेपर गड़गड़ेकी निगाली खींच देखता हूँ,—कहता हूँ कोई है ? चिलम भर दे। शायद भर भी देता है। पर खींचनेपर देखता हूँ, धुआँ नहीं है। डाँटने पर कहता है कि आप सो रहे थे, चढ़ी चिलम जल गई है। परीक्षा करनेकी शक्ति नहीं है। फिर भी ऊँची

आवाजमें डाँटकर कहता हूँ,—हाँ, सो रहा था और नहीं तो क्या ! झूठा कहींका। फिर भर दे, जल्दी, दिल्लीसे लाई उस बड़ी चिलमको जिससे इस वेलामें जल नहीं जाय। उसके चले जानेपर मन ही मन कहता हूँ भगवान सचमुच ही हैं, तो मेरे दुलारको मान क्यों नहीं लेते ? कोई इतनी तुम्हारी निन्दा नहीं करेगा। सिरकी कसम बाबा, आप मान लें।

एक दिन मान लेंगे जानता हूँ, पर मेरी ही तरह समय बीत जानेपर। तब प्रसन्नतापूर्वक नहीं ले सकूँगा। बुलावा आ गया। पाथेय मौजूद है। सोते सोते और जागते जागते पढ़ना शुरू कर देता हूँ। बहुत दिनोंकी आदत है। बहुतेरी अफीम खूनमें मिली हुई है। हारा हूँ बहुतोंसे, पर हराया है बेटा आबकारी वालोंको। इसीलिये भरोसा है कि नींदमें भी पाथेयका रस नीचे नहीं जा गिरेगा।

मेरी चिट्ठीकी भाषा सदासे बेतरतीब होती है। आदमीको परिश्रम करके समझना पड़ता है, यह उसकी सजा है। आपको भी मिली। प्रार्थना करता हूँ, बीच बीचमें जो समाचार देते रहते हैं गुस्सेमें आकर उनसे वंचित न कर दें। आपके स्नेहका —श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

सामताबेड़, पानित्रास,
५ आषाढ़ १३३८

सुहृद्वरेषु। केदार बाबू, आपकी स्नेह-शीतल चिट्ठी यथासमय मिल गई थी। लेकिन इन दिनों इतना व्यस्त था कि जवाब नहीं दे सका। कल हमारे हावड़ा जिलेका चुनाव हो गया। इस बार विरोधी दलका हल्ला-गुल्ला, गाली-गलौज और लाठी पटकना देखकर सोचा था कि खून खराबीके बगैर चुनाव समाप्त नहीं होगा। मैं सभापति हूँ, अतएव मुझे भी बाकायदा तैयार होन पड़ा। सभामें दंगेकी आशंका है, इससे मैं बहुत डरता हूँ। इसीलिये काँटेदार तारका घेरा मय एलेक्ट्री फिकेशनके सब कुछ तैयार रखा गया था। और तैयारीके कारण ही दंगा नहीं हुआ। निर्विघ्न दखल कायम रह गया। दसेक सालसे सभापति हूँ। निहित स्वार्थ उत्पन्न हो गया है। आसानीसे छोड़ा नहीं जा सकता। छोड़ा जा सकता है क्या ? हमारे दलका तर्क है कि

गलतियाँ कितनी ही क्यों न हों, तुम लोग बोलनेवाले कौन हो ? और देशकी आज़ादी आती है तो हमींसे आये। तुम लोगोंसे नहीं आयेगी। तुम लोग हाथ डालने मत आओ। लेकिन वे राजी नहीं होते हैं। इसलिये हमें गुस्सा आता है। नहीं तो हमारा अर्थात् सुभाषी दलका मिजाज बहुत ही ठंडा है। बहुत कुछ आप ही जैसा। बहरहाल अब कुछ समय मिला है। एक दो महीने किताब लिखूँ। क्या कहते हैं ?

जब कलकत्ता आये थे तो मुझे जरा खबर क्यों न दी ? रास्ते खराब कितने ही क्यों न हों कोई सूरत निकालता ही। काशी कब जा रहे हैं ? एक मुलाकात होती तो अच्छा होता। समाचार दें। आपका शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

---

२४ अश्विनीदत्त रोड
कालीघाट, कलकत्ता।
२१ कार्तिक १३४३।

प्रियवरेषु। मैं भी आन्तरिक प्रीति नमस्कार भेजता हूँ। संसारमें मैं आपसे जरा देरमें आया हूँ। इसलिये संसारसे देरमें जाना होगा विधाताने ऐसा कोई कड़ा नियम नहीं बनाया है। आपको यह लिखना जरूरी समझता हूँ। कोई किरानी दफ्तरमें देरसे आया करता था। साहबके जिक्र करने पर उसने कहा था—यस सर आई कम लेट, बट आई आलवेज गो अर्ली। ऐसा भी होता है केदार बाबू। —आपका शरत्बाबू

२५

[चारुचन्द्र बन्द्योपाध्यायको लिखित]

हावड़ा रेलवे स्टेशन
१ अप्रैल १९३०

भाई चारु, आज ढाकाके लिए रवाना होकर भी घर लौटा जा रहा हूँ। आज कलकत्तेके गाड़ीवानोंके हड़ताल और सत्याग्रह करनेसे अर्थात् सी. एस.

पी. सी. ए. के अधिकारियोंके विरुद्ध सत्याग्रह करनेके कारण एक भीषण घटना घटी, सरजेण्टोंसे मारपीट हुई,—किलेसे गोरोंने आकर गोली चलाई। सुनता हूँ, चार आदमी मरे हैं।

यह तो हुई कलकत्तेकी बात। लेकिन हावड़ा शहरमें भी सी. एस. पी. सी. ए. है और मैं उसका सभापति हूँ। यह भी एक बड़ा विभाग है। आज हावड़ाके मॅजिस्ट्रेट और पुलिस सुपरिटेण्डेण्टने किसी तरह हावड़ामें दंगा रोका है पर कहा नहीं जा सकता कि कल क्या होगा। इस विभागका अधिकारी होनेके कारण होकर इस समय मुकाम छोड़कर कहीं जाया नहीं जा सकता है, इसी लिए रास्तेसे लौटा जा रहा हूँ। कल सवेरे ही फिर लौटना पड़ेगा।

जानता हूँ तुम अतिशय दुःखी होगे, पर यह न जाना मेरे लिए नितान्त दैविक घटना है।

गोलमाल जरा थमे, अपने दफ्तरको सँभाल लूँ। तब तुमसे मुलाकात कर आऊँगा। आशा करता हूँ माफ करोगे। तुम्हारा—शरत्

बाजे शिवपुर, हावड़ा
२१ अप्रैल १९२५

भाई चारु, अभी अभी तुम्हारी चिट्ठी मिली। आज चिट्ठी-पत्री लिखनेके लायक मेरी मानसिक दशा नहीं है, फिर भी तुम्हें इस बातको सूचित किए बगैर न रह सका। आनेके समय रास्तेमें एक मृतप्राय बछड़ा पड़ा था, उसकी बात तुम्हें शायद याद होगी। इसके बाद ही एक जबह किया हुआ मुरगा दिखाई पड़ा। तुमसे कहता हूँ कि आज जाते समय इतनी मौतें क्यों दिखाई पड़ रही हैं? तुमने कहा कि एक गोह भी तो था, मैंने कहा कि कहाँ, मैंने तो नहीं देखा।

इसके बाद तुम लोग स्टेशनसे चले गए, गाड़ी छूटनेके बाद ही देखा, रास्तेके किनारे गिद्धोंका झुण्ड जमा है और एक कुत्ता मरा पड़ा है। मेरा अपना कुत्ता अस्पतालमें था—मेरा मन कितना खराब हो गया यह नहीं बतला सकता। अँगरेजीमें जिसे अंध विश्वास कहते हैं वह मुझमें नहीं, पर तीन-तीन मौतोंकी बातने मुझे रास्तेमें क्षणभरके लिए शान्ति नहीं दी।

घर आकर सुना कि भेलू अच्छा है और अस्पतालकी चिट्ठी मिली।

२७ अपरैल १९२५

बृहस्पतिवारको घर ले आया, अगले बृहस्पति सवेरे ६ बजे भेलू मर गया। मेरा चौबीसों घंटोंका संगी अब नहीं रहा। संसारमें इतनी पीड़ाकी बात भी है, इसे मैं ठीक-ठीक नहीं समझता था। शायद इसी लिए मुझे इसकी आवश्यकता थी। चारु, और एक बात समझ सका, संसारमें objective कुछ भी नहीं, subjective ही सब कुछ है। नहीं तो एक कूकरके सिवा और कुछ तो नहीं! राजा भरतकी कहानी कभी झूठी नहीं है। तुम्हारा—शरत्

---

२८ माघ १३४२

प्रियवरेषु। भाई चारु, इसी बीच मैं घर गया था। गाँवका मिट्टीका घर और रूपनारायण नद—इनकी मायाके कारण मैं अधिक दिनोंतक कहीं नहीं रह पाता हूँ। लेकिन यह भी सच है कि इनकी मायाको तोड़कर चले जानेमें अब अधिक देर नहीं है। पुराने इष्ट-मित्र बहुतेरे आगे चले गए हैं। उन्हें मैं निरन्तर स्मरण करता हूँ। अभी-अभी दिवंगत अध्यापक विपिन गुप्तके श्राद्धमें जानेका निमंत्रण मिला। शिवपुरमें न जाने कितनी ही शामें इनके साथ बहसमें बीती हैं। तुम पुराने मित्रोंमेंसे हो, आशा है कमसे कम तुमसे पहिले जा सकूँगा। निरन्तर पीछेकी बातें सोचता हूँ, आगेकी ओर एक बार भी निगाह नहीं जाती है। लेकिन जाने दो इन बातोंको, तुम्हारा मन खराब करनेसे लाभ नहीं।

तुम्हारी दोनों ही चिट्ठियाँ मिलीं, जिन्होंने मुझे उपाधि देनेका प्रस्ताव किया था उनकी श्रद्धा और प्यार ही सबसे बड़ी उपाधि है। इस बातको याद करने दिल भर आता है।

ढाका अगर जा सका तो तुम्हारे ही यहाँ जा धमकूँगा, तुमने न्योता भले ही न दिया हो। अपनी गृहिणीको मेरा श्रद्धायुक्त नमस्कार देकर कहना कि उनके आह्वानकी अवहेलना नहीं करूँगा। तुम्हारा—शरत्

२६

['आत्मशक्ति' सम्पादकको लिखित]

५ आश्विन १३३४

श्रीयुक्त आत्मशक्तिसम्पादक महाशयकी सेवामें। आपकी ३० भाद्रपदकी 'आत्मशक्ति' पत्रिकामें मुसाफिर लिखित 'साहित्यका मामला' पढ़ा। किसी समय बंगला-साहित्यमें सुनीति दुर्नीतिकी आलोचनासे पत्रिकाओंमें कितनी ही कठोर बातें खड़ी हो गई हैं, और आज अकस्मात् साहित्यमें 'रसकी' आलोचनामें कटु रस ही प्रबल हो रहा है। ऐसा ही होता है। देवताके मंदिरमें सेवकोंकी जगह 'सेवायतों'की संख्या बढ़ते रहनेसे देवीके भोगकी मात्रा बढ़नेके बदले घटती ही रहती है। और मामला तो रहता ही है।

आधुनिक साहित्य-सेवियोंके विरुद्ध सम्प्रति बहुतेरी कटूक्तियाँ बरसाई गई हैं। बरसानेके पुण्यकार्यमें जो लोग लगे हुए हैं मैं भी उन्हींमें एक हूँ। 'शनिवारकी चिट्ठी' के पृष्ठोंमें उसका प्रमाण है।

मुसाफिरलिखित इस 'साहित्यका मामला' के अधिकांश मन्तव्योंसे मैं सहमत हूँ, उसकी केवल एक बातसे किंचित् मतभेद है।

रवीन्द्रनाथकी बात रवीन्द्रनाथ जाने, पर अपनी निजी बात जितनी जानता हूँ उससे शरच्चन्द्र 'कल्लोल' 'काली कलम' या बंगलाके किसी भी पत्रको नहीं पढ़ते हैं या पढ़नेकी फुर्सत नहीं पाते है, मुसाफिरका यह अनुमान सही नहीं है। लेकिन इस बातको मानता हूँ कि पढ़कर भी सारी बातें नहीं समझता। पर बिना पढ़े ही सारी बातें समझता हूँ इसका दावा नहीं करता।

यह तो हुई मेरी अपनी बात। लेकिन जिस बातको लेकर झगड़ा उठ खड़ा हुआ है वह क्या है और लड़कर किस प्रकारसे उसका निपटारा होगा यह मेरी बुद्धिसे परे है।

रवीन्द्रनाथने साहित्यके धर्मका निरुपण कर दिया और नरेशचन्द्रने इस धर्मकी सीमा निश्चित कर दी। जैसा पाण्डित्य है वैसा ही तर्क भी। पढ़कर मुग्ध हो गया। सोचा, बस, इसपर और क्या कहा जा सकता है! लेकिन

कहा बहुत कुछ गया। तब कौन जानता था कि किसकी सीमामें किसने पैर बढ़ाया है और सीमाकी चौहद्दीको लेकर इतने लट्ठबाज तैयार हो जायँगे। कुआँरकी 'विचित्रा'में श्रीयुक्त द्विजेन्द्रनारायण बागची महाशयने 'सीमानेपर विचार' पर अपनी राय दी है। बीस पृष्ठ लम्बी ठोस बिनाईका मामला है। कितनी बातें हैं, कितने भाव हैं। जैसी गम्भीरता है, वैसा ही विस्तार, वैसा ही पाण्डित्य भी। वेद, वेदान्त, न्याय, गीता, विद्यापति, चण्डीदास, कालिदासके श्लोक, उज्ज्वल नीलमणि जैसे, मय व्याकरणके अधिकरण कारक तक। बापरे बाप! मनुष्य इतना कब पढ़ता है, और न जाने कैसे याद रखता है!

इसके मुकाबलेमें 'लालतूलमंडित वंश-खण्डनिर्मित क्रीडा-गाण्डीव'-धारी नरेशचन्द्र बिलकुल भुर्त्ता हो गए हैं। हमारे अवैतनिक नव-नाट्य-समाजके बड़े अभिनेता नरसिंह बाबू थे। राम कहो, रावण कहो, हरिश्चन्द्र कहो, सबपर उन्हींका इजारा था। अचानक एक और सज्जन आधमके, उनका नाम था राम-नरसिंह बाबू। और भी बड़े अभिनेता! जैसे मुक्त स्वरसे पुकारते थे, हस्त-पद-संचालनमें भी उनका पराक्रम अप्रतिहत था। मानों मतवाला हाथी। इस नवागत राम-नरसिंह बाबूके रौबके सामने हमारे केवल नरसिंह बाबू तृतीयाकी शशि-कलाकी भाँति मद्धिम पड़ गए। नरेश-बाबूको नहीं देखा है पर कल्पनामें उनका चेहरा देखकर ऐसा लग रहा है मानों वह हाथ जोड़कर चतुराननसे कह रहे हैं—प्रभु! मेरे लिए बनमें जाकर रहना इससे कहीं अच्छा है।

द्विजेन्द्रबाबूकी बहसकी शैली जैसी तगड़ी है, दृष्टि भी वैसी ही छुरे-सी पैनी। इतने सतर्क रहते हैं मानो फैसलेके मसौदेमें कहीं एक अक्षरका भी अन्तर न आने पावे। मानो बड़े जालमें रोहूसे लेकर घोंघा-सीप तक छान लानेके लिए बद्ध-परिकर हैं।

हाय रे फैसला! हायरे साहित्यका रस! मथते मथते मानो तृप्ति नहीं हो रही है। रवीन्द्रनाथ और नरेशचन्द्रको दाहिने बायें रखकर अक्लान्तकर्मी द्विजेन्द्रनाथ निरपेक्ष समान गतिसे मानो रुई धुन रहे हैं।

लेकिन ततः किम्?

पर यह किम् ही बड़ी चिन्ताकी बात है। नरेशचन्द्र अथवा द्विजेन्द्रनाथ ये

लोग साहित्यिक व्यक्ति हैं, इनका भाव-विनिमय और प्रीति-संभाषण समझमें आता है। लेकिन इन आदर-सत्कारोंका सूत्र पकड़कर जब बाहरवाले आकर उत्सवमें योगदान करते हैं, तब उनके ताण्डव नृत्यको कौन रोक सकता है?

एक उदाहरण दूँ। इसी कुआँरके 'प्रवासी' में श्रीव्रजदुर्लभ हाजरा नामक एक व्यक्तिने रस और रुचिकी आलोचना की है। इनके आक्रमणका लक्ष्य तरुणोंका दल है। और अपनी रुचिका परिचय देते हुए कहते हैं—"इस समय जिस प्रकार राजनीतिकी चर्चामें शिशु और तरुण, छात्र और बेकार व्यक्ति निरंतर तल्लीन हैं" उसी प्रकार अर्थोपार्जनके लिए इन बेकार साहित्यिकोंका दल ग्रंथरचनामें लगा हुआ है। और उसका परिणाम यह पुकार है कि, "हाँड़ी चढ़ाकर कलम पकड़नेसे जो कुछ होना चाहिए वही हुआ है।"

इस व्यक्तिने डिपुटीगीरी करके पैसा जमा किया है और आजन्म गुलामी-का पुरस्कार, लम्बी पेन्शन भी इसे नसीब हुई है। इसीलिए साहित्य-सेवियोंके निरतिशय दारिद्र्यका उपहास करनेमें इसे संकोच नहीं हुआ। यह आदमी जानता भी नहीं है कि दारिद्र्य अपराध नहीं है और सभी देशों और सभी युगोंमें इन्होंने अनशन करके प्राण दिया है। इसीलिए साहित्यको आज इतना बड़ा गौरव मिला है।

व्रजदुर्लभ बाबू भले ही न जाने पर 'प्रवासी'के प्रवीण और सहृदय सम्पादकसे तो यह बात छिपी नहीं हुई है कि साहित्यके भले-बुरेकी आलो-चना और दरिद्र साहित्यिकके चूल्हा न जलनेकी आलोचना एक ही वस्तु नहीं है। मेरा विश्वास है कि उनके अनजाने ही इतनी बड़ी कटूक्ति उनकी पत्रिकामें छप गई है। और इसके लिए वह पीड़ाका ही अनुभव करेंगे और शायद अपने लेखकको बुलाकर कानमें कह देंगे, भैया, मनुष्यकी गरीबीकी खिल्ली उड़ानेमें जो रुचि प्रकट होती है वह भद्र समाजकी नहीं है और लोटा चुरानेके फैसलेमें सिद्धहस्त होनेसे साहित्यके 'रस'का विचार करनेका अधिकार नहीं उत्पन्न होता है। इन दोनोंमें अन्तर है पर वह तुम्हारी समझसे परे है।

२७

[श्री मणीन्द्रनाथ रायको लिखित]

सामताबेड़, पाणित्रास, जिला हावड़ा
१ जून १९२७

परमकल्याणीयेषु । मणीन्द्र, तुम्हारी चिट्ठी यथासमय मिल गई थी, लेकिन कुछ तो अब-तबमें और कुछ शारीरिक हालतके कारण जवाब देनेमें देर हो गई ।

तुम हमारे यहाँ आवोगे, इस बातको सुनकर मुझे खुशी होगी यह तुम्हें मालूम है । मगर तुम्हें कष्ट होगा । पहली बात है बड़ी गरमी है, और मैदानोंके बीचसे ठीक दोपहरको आना बड़ी भयंकर बात है । कुछ पानी-वानी बरस जाय तो और किसी दिन आना । इसके अलावा इस ६ तारीख तक मैं शिवपुरमें रहूँगा । कुछ काम भी है और एक-दो दिन शिशिर भादुड़ीके थियेटरमें षोड़शीका रिहर्सल देखूँगा ।

(पुस्तक जब 'भारती'में प्रकाशित हुई तभी शिवराम चक्रवर्तीने नाटकमें रूपान्तरित की थी । मैंने फिर ठीक-ठाक करके शिशिरके अभिनयके योग्य बना दी है । शायद बहुत बुरी नहीं हुई है । संभव हो तो एक दिन आकर देखना ।)

इसी बीच एक दिन छुट्टी लेकर तुम्हारे यहाँ जाकर तुम्हारे पितासे मुलाकात और फिर ब्राह्मण-भोजन कर आनेकी बड़ी इच्छा हुई है । तुम्हारे घरके आन्तरिक यत्नसे भोजन करानेके प्रति मुझे लोभ नहीं है, ऐसी बात नहीं । और सब कुशल है, केवल बवासीरके कारण बहुत ज्यादा खून जानेसे कमजोर हो गया हूँ ।

आशा है तुम लोग मजेमें हो । भूपेन बाबू कैसे हैं ? मेरा स्नेहाशीर्वाद लेना । —दादा

सामताबेड़, पाणित्रास पोस्ट
जिला हावड़ा
२७।८।१९२७

परमकल्याणवरेषु। मणीन्द्र, तुम्हारी चिट्ठी मिली, तुम्हारी चिट्ठी पढ़कर इच्छा होती है अभी चल दूँ। पर भाई मैं स्वस्थ नहीं हूँ। करीब दो हफ्तेसे कुछ इन्फ्लुयेंजा-सा होकर बहुत कमजोर कर गया है। इसके अलावा स्टेशन जानेके लिए जो एक रास्ता है उससे बादल-वर्षामें जानेकी कल्पना करनेमें भी डर लगता है। पालकी लेकर चलनेमें आशंका होती है कि कहीं बाँधसे फिसलकर नहरमें न जा गिरे। अच्छी जगह आ फँसा हूँ। यहाँके लोगोंके लिए एक सुभीता है। इस वर्षामें उनके पैरोंमें खुर निकल आते हैं, बड़े इतमीनान-से सर्राटेसे चलते हैं, फिसलनेका उन्हें कोई डर नहीं। मेरे अभी खुर नहीं निकले हैं पर इन लोगोंने आशा बँधाई है कि और एक दो साल रहनेपर निकल आयँगे। असभव नहीं है, लेकिन मैंने कहा है कि मुझे खुरोंकी आवश्यकता नहीं, बल्कि मैं जहाँ था वहीं वापिस चला जाऊँगा।

याद भी नहीं है कि तुम्हारे पितासे कितने दिनोंसे मुलाकात नहीं कर सका हूँ। लेकिन उनके मधुर स्वभावके लिए उनके प्रति मुझमें न जाने कितनी श्रद्धा है। उन्हें मेरा नमस्कार कहना। बदनमें कुछ ताकत आते ही जाकर मिल आऊँगा।

षोड़शीका अभिनय मैंने केवल एक ही बार देखा है, और उसीसे भुगत रहा हूँ। पानीमें भीगकर, कीचड़में चलकर यह इन्फ्लुएन्जा मोल ली है। हो सके तो तुम आकर एक बार मिल जाना। यथार्थ ही शिशिर और चारु (जीवानन्द-षोड़शी) के अभिनय देखनेकी चीज हैं। आशीर्वाद लेना।

— दादा।

२८

[श्री बुद्धदेव भट्टाचार्यको लिखित]

२४ अश्विनीदत्त रोड, कलकत्ता
२५ वैशाख १३४४

कल्याणीयेषु । बुद्धदेव, मेरा चिट्ठी लिखनेका कागज तो आजतक नहीं पहुँचा । शायद सभी भूल गए हैं । फिर बड़े जोरोंका बुखार शुरू हो गया था । इस बारकी खूनकी जाँचमें यद्यपि कुछ भी नही मिला तो भी उन्होंने तय किया है कि यह मैलेरियाके सिवा और कुछ भी नहीं है ।... छोड़ो रोगकी कहानीको । एक बात । आजकल बड़े आदमियोंके घरमें लड़कीका नाम अकसर अञ्जलि रखा जाता है । लेकिन सभी दीर्घ 'ई' से लिखते हैं । अञ्जलिको अञ्जली लिखनेसे क्या स्त्रीलिंग हो सकता है ? किसी किसीका कहना है कि बंगलामें हो सकता है । नहीं जानता । फुर्सत मिलने पर एक बार आना । आशीर्वाद लेना । —दादा

२९

[१९१३ के अंतमें लिखित]

परम कल्याणीय ।...कभी कभी सोचता हूँ कि कुछ दिनोंकी छुट्टी लेकर बर्मामें ही किसी स्वास्थप्रद स्थानमें जाकर रहूँ और कलकत्ता न आऊँ । जो कुछ हुआ बादमें लिखूँगा । फिलहाल अच्छा हूँ । लेकिन लिखना-पढ़ना सोलहों आने छोड़ देना पड़ा है । तुम लोग मुझे कलकत्तेमें रहनेके लिए कह रहे हो, यह सच है । लेकिन मुझे यह पसंद नहीं । नौकरी-चाकरी छोड़कर यह अस्वस्थ शरीर लेकर खानाबदोश बनना बिलकुल पसंद नहीं । और, किसीके पास जाकर रहना—यह तो एकदम असंभव है । मैं बल्कि अस्पतालमें मरूँगा पर किसी भी हालतमें इस पीड़ित शरीरको किसीके घरमें अंतिम बार नहीं रखूँगा । इससे मैं घृणा करता हूँ । मेरे बहुतेरे सम्बन्धी और

मित्र हैं, इसे जानता हूँ। जानेपर कुछ दिनों तक देख-भाल नहीं होगी ऐसा नहीं समझता। लेकिन मैं ख्वामखाह कष्ट नहीं देना चाहता। अगर गया तो अपनी बड़ी बहनके यहाँ ही रहूँगा, एक प्रकारसे वही मेरा घरद्वार है। उसकी हालत भी बहुत अच्छी है—जानेके लिए बारम्बार तगादा भी कर रही हैं। लेकिन अस्वस्थ शरीर लेकर मैं कहीं जाना नहीं चाहता। मुझे बारम्बार इसी बातका डर लगता है कि कहीं अचानक मरकर उन्हें परेशान न करूँ। पर अब शायद आशंकाके लिए कारण नहीं। वर्षा ऋतुका समय मेरे लिए बड़ा ही कठिन होता है। वह तो समाप्त हुई। अब आशा है, धीरे धीरे चंगा हो जाऊँगा। अपने दुःसमयमें अगर 'चरित्रहीन' समाप्त नहीं कर सकूँ तो दूसरा कौन कर सकता है, इसे पिछली बार पूछा था। इसका उत्तर देकर निश्चिन्त करना।

एक बात और जाननेकी इच्छा है। 'नारीका मूल्य' समाप्त हो गया। इसकी इतनी प्रशंसा होगी इसे सोचा भी नहीं था, लेकिन अब परिचित अपरिचित लोगोंसे इसकी कितनी ही आलोचनाएँ और पत्र पाकर लग रहा है कि इसने लोगोंकी दृष्टि आकर्षित की है। मैं पूरी तरह स्वस्थ होता तो जैसा पहिले संकल्प किया था शायद वैसा ही होता।...

पर एक बात यह भी है कि जो भी प्रतिवाद क्यों न करें नितान्त महिलाकी रचना होनेके कारण अवहेलना न करें। अच्छी बात है, यह मेरी लिखी हुई है, यह बात मणिलालको कैसे मालूम हुई? मानसी, प्रवासी, साहित्य इन्होंने ही कैसे जाना? कहीं तुमने तो प्रचार नहीं कर दिया? हाँ, जो मेरी रचनाओंसे घनिष्ठरूपसे परिचित हैं वे समझ जायँगे। लेकिन यह बात साधारण लोगोंके समझमें आनेकी नहीं।...

('युगान्तर' माघ १३४४)

३०

[?]

५४, ३६ वाँ स्ट्रीट, रंगून
१।२।१६

सविनय निवेदन। परिचयका सौभाग्य न होने पर भी महाशयका आशीर्वाद और प्रशंसा पाकर अपनेको बारम्बार धन्य समझ रहा हूँ। आपने अपनेको वृद्ध लिखा है, मैं भी तो एक प्रकारसे वही हूँ। मेरी उम्र (३९) उनतालीस है, फिर भी अगर उम्रमें कुछ छोटा होऊँ तो मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

पत्रमें आपने अपना जो थोड़ा-सा परिचय दिया है, उसीसे समझमें आ जाता है कि संसारके भिन्न भिन्न सभ्यताके केन्द्रोंको अपनी आँखोंसे देख आनेके कारण ही जन्मभूमिके प्रति आपकी ममताका कम होना तो दूर रहा बल्कि वह बढ़ गई है। या यह बात भी शायद ठीक नहीं है। क्यों कि ज्ञान और अनुभवके आधारपर ही जन्मभूमि ग्राम-जननीके प्रति स्नेह उत्पन्न होता है, ऐसा भी नहीं। मैं कलकत्ता-प्रवासी बहुतेरे बड़े आदमियोंके जन्मस्थान अपनी आँखोंसे देख आया हूँ। लेकिन उनकी दुर्दशाकी कोई सीमा नहीं। उनमें जितना सामर्थ्य है उसका शतांश भी अगर वे उस दिशामें दान देते, तो शायद दुःखी गाँवोंके सौभाग्यका पारावार नहीं रहता।

मेरे पास समय और सामर्थ्य दोनों इतने कम हैं कि उन्हें सोलहों आने गिनतीमें न लेनेसे भी किसीको दोष नहीं दिया जा सकता। फिर भी मैं केवल यही चेष्टा करता हूँ कि कहीं एक भी आदमीकी दृष्टि अपने गाँवकी ओर आकर्षित हो जाय। इसीलिए अत्यन्त अप्रिय और क्लेशदायक होनेपर भी गाँवोंके सम्बन्धमें अच्छी बातें लिखनेकी चेष्टा करता हूँ। शहरके लोग कल्पनाके आधारपर गाँवोंकी जो प्रशंसा करते हैं अधिकांशमें वह यथार्थ नहीं होती, बल्कि गाँव धीरे धीरे अवनतिकी ही ओर जा रहे हैं। इस बातको 'ग्रामीण समाज' नामक पुस्तकमें बतानेकी चेष्टा की थी। लेकिन चेष्टा करने और सफलतामें जो अन्तर होता है मेरी रचनामें भी उतना हुआ है।

आपने इसे नाटकके आकारमें प्रकाशित करनेका उपदेश दिया है। शायद करनेसे अच्छा ही होगा। लेकिन मुझमें तो वह क्षमता नहीं है। कमसे कम है या नहीं, इसकी कभी परीक्षा नहीं की। अगर दूसरा कोई कष्ट करके करता है जिसमें क्षमता है तो शायद अच्छा भी हो सकता है। लेकिन मेरा करना शायद व्यर्थ परिश्रम मात्र होगा। और कोई नाट्यमंच अपने समय और सामर्थ्यका अपव्यय करके उसे मंचस्थ भी नहीं करना चाहेगा। पर आपके उपदेशको ध्यानमें रखकर भविष्यमें अगर कुछ कर सका तो चेष्टा करूँगा। पहिले गाँवके सम्बन्धमें मेरी 'पंडित महाशय' पुस्तकको भी किसी किसीने 'नाटक' करनेकी बात उठाई थी, पर हो नहीं सका। वह शायद और भी अच्छा बन सकता था।

जो कुछ भी हो इस उपदेशको मैं भूलूँगा नहीं और इसके लिए आपको प्रणाम करता हूँ।

—श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

कहानियाँ

रवीन्द्रकथाकुंज	(रवीन्द्र)	१।।।)
मानवहृदयकी कथायें	(मोपाँसाँ)	२)
शतरंजका खेल	(स्टीफन ज्विग)	२।।)
वातायन	(जैनेन्द्रकुमार)	२।।)
सप्तर्षिलोक	(शोभाचन्द्र जोशी)	२।।)
एकलव्य	,,	१।।)
चार कहानियाँ	(सुदर्शन)	३)
नवनिधि	प्रेमचन्द्र	१।।)
ग्राम्यजीवनकी कहानियाँ	,,	२)

काव्य

उर्दू शायरी	(विविध कवि)	५)
सुमनांजलि	(अनूप शर्मा)	२।।)

साहित्य—आलोचना

कबीर	(डा० हजारीप्रसाद)	४)
हिन्दी साहित्यकी भूमिका	,,	३।।)
प्राचीन भारतका कलात्मक विनोद	,,	४)
साहित्य	(रवीन्द्र)	२)